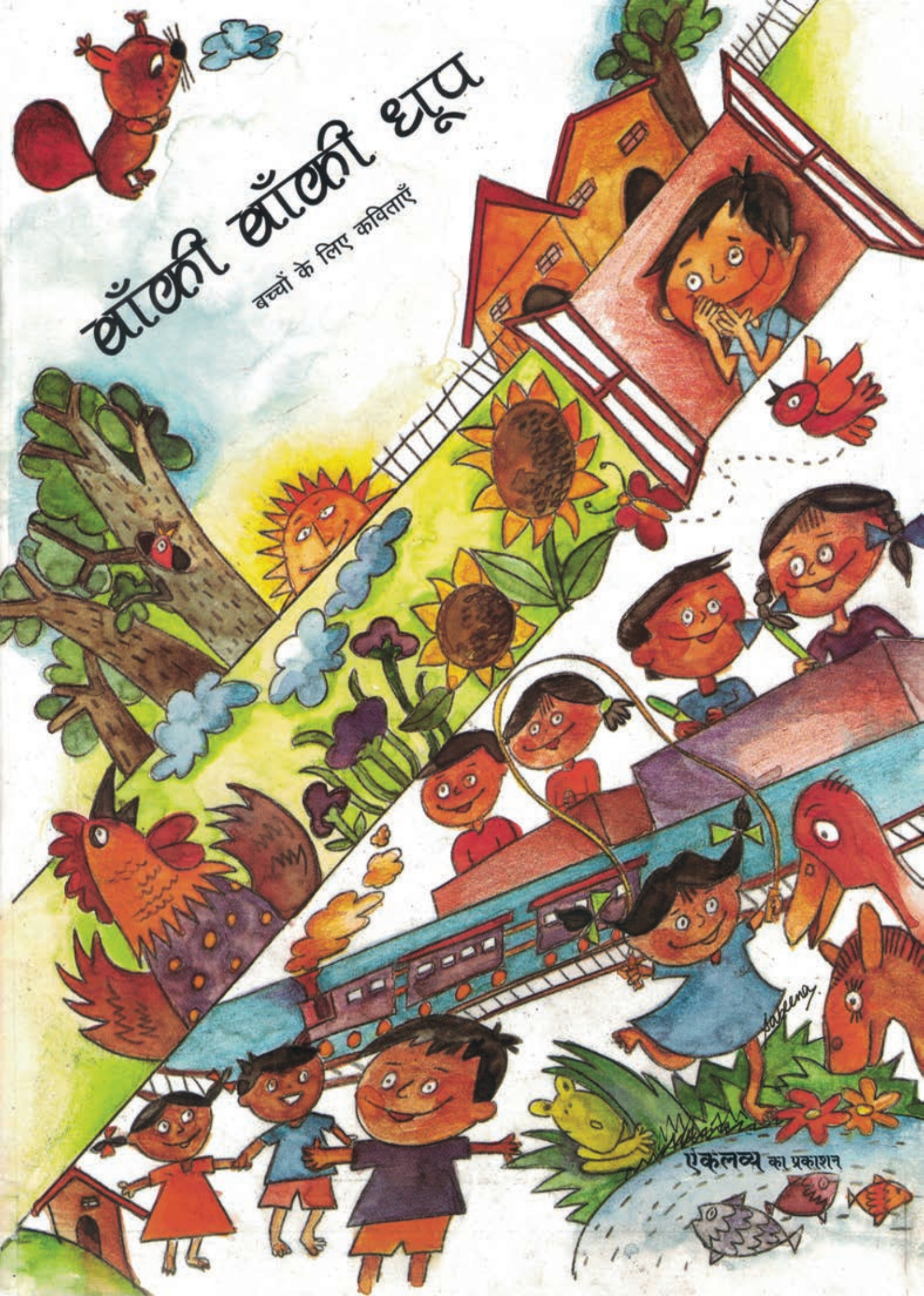

झाँकी झाँकी धूप

बच्चों के लिए कविताएँ

एकलव्य का प्रकाशन

बाँकी-बाँकी धूप

तथा अन्य कविताएँ

चकमक में प्रकाशित
बाल कविताओं का संग्रह

एकलव्य का प्रकाशन

बाँकी-बाँकी धूप

Banki Banki Dhoop

(चकमक में प्रकाशित बाल कविताओं का संग्रह)

आवरण: सबीना सभरवाल
पिछला आवरण: नर्मदा प्रसाद

पहला संस्करण: जनवरी 1998
पहला पुनर्मुद्रण: मार्च 2001
दूसरा पुनर्मुद्रण: जुलाई 2007/3000 प्रतियाँ
तीसरा पुनर्मुद्रण: मई 2008/3000 प्रतियाँ
चौथा पुनर्मुद्रण: मार्च 2010/3000 प्रतियाँ
पाँचवाँ पुनर्मुद्रण: जून 2014/3000 प्रतियाँ
छठवाँ पुनर्मुद्रण: सितम्बर 2017/3000 प्रतियाँ
सातवाँ पुनर्मुद्रण: सितम्बर 2019/3000 प्रतियाँ
कागज़ 80 gsm मेपलिथो व 130 gsm आर्ट कार्ड कवर
पराग इनिशिएटिव, टाटा ट्रस्ट मुम्बई के वित्तीय सहयोग से विकसित।
ISBN: 978-81-87171-00-3
मूल्य: ₹ 53.00

प्रकाशक: **एकलव्य फाउंडेशन**
जमनालाल बजाज परिसर
फॉर्च्यून कस्तूरी के पास, जाटखेड़ी,
भोपाल - 462 026 (मप्र)
फोन: +91 755 - 297 7770, 71, 72, 73
www.eklavya.in / books@eklavya.in

मुद्रक: आर के सिक्युप्रिंट प्रा लि, भोपाल फोन: +91 755 2687 589

आपस की बात

'बाँकी-बाँकी धूप' बच्चों के लिए बड़ों द्वारा लिखी गई कविताओं का संकलन है। इस संग्रह में संकलित कविताएँ चकमक बाल विज्ञान पत्रिका से ली गई हैं। चकमक, एकलव्य (जो कि एक स्वैच्छिक संस्था है) द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को उनके स्थानीय परिवेश में विकसित करना रहा है।

चकमक का प्रकाशन सन् 1985 में शुरू हुआ था। प्रकाशन के पाँचवें साल में आते-आते यह लगने लगा कि चकमक में प्रकाशित होने वाली सामग्री को एकत्रित कर पुस्तकों के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐसी पुस्तिकाओं की पहली योजना बच्चों की लिखी कविताओं तथा कहानियों से बनी। सन् 1989 में 'प्यारा लड्डू' शीर्षक से बच्चों की कविताओं का और 'लोमड़ी और जमीन' शीर्षक से कहानियों का संकलन प्रकाशित हुआ। इस नए प्रयोग का मिला-जुला स्वागत हुआ था।

इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए फरवरी, 1997 में बच्चों की रचनाओं के दो और संग्रह प्रकाशित हुए। कविताओं का संग्रह 'हमको फिर छुट्टी' और कहानियों का 'आज़ादी की नुक्ती' शीर्षक से। फिर मार्च, 1997 में चकमक में प्रकाशित नाटकों के दो संग्रह 'नजानू के रंग' तथा 'हड्डी' भी सामने आए हैं।

चकमक के हर अंक में बड़ों द्वारा लिखी कविताएँ भी प्रकाशित होती हैं। अधिक तो नहीं पर हर अंक में कम से कम तीन पेज अवश्य होते हैं। किन्तु कहानी तथा कविताओं को लेकर हमेशा यह दुविधा रही है कि चकमक के तेवर की रचनाएँ आसानी से नहीं मिल पाती हैं। हालाँकि लेखकों के साथ लगातार संवाद बनाए रखकर इस परिस्थिति से उबरने की कोशिश की गई है। कविताओं में कुछ हद तक स्थिति बदली है। लेकिन कहानियों के मामले में विशेष सफलता नहीं मिली है।

चकमक के तेवर से अर्थ है कि रचनाएँ ऐसी हों जिनसे बच्चों का स्वस्थ मनोरंजन हो। रचना में वे बातें नज़र आती हों, जो चकमक में निहित हैं। रचनाएँ उपदेशमूलक न होकर बच्चों को स्वतंत्रता के साथ अपना जीवन जीने के लिए प्रेरित करती हों। उनमें प्रकृति और अपने आसपास का जीवन चित्रित हो। यह चित्रण भी इस तरह का हो कि जिसमें किसी को ठेस नहीं पहुँचती हो, मज़ाक नहीं उड़ता हो। किसी की भावनाएँ आहत नहीं होती हों। उनमें कोरी आदर्शवादिता न हो। हाँ, जिन समस्याओं, अव्यवस्थाओं और कुरीतियों पर चोट करने की ज़रूरत है, वह ज़रूर हो। ऐसी तमाम और बातें हैं।

बच्चों की कविताओं के विषय सब जानते हैं। इन विषयों से चकमक को परहेज़ नहीं रहा है। पर चकमक की कोशिश रही कि ऐसी कविताएँ चुनी जाएँ जिनमें इन विषयों को नए बिम्बों, नए दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया गया हो। चकमक में प्रकाशित होने वाली रचनाओं के चयन का आधार कभी भी लेखक का नाम नहीं रहा। वरिष्ठ से वरिष्ठ रचनाकार की कविता को भी तभी स्थान मिला है, जब कविता चकमक के तेवर के अनुकूल बन पड़ी हो।

चकमक के अब तक प्रकाशित 163 अंकों में से तीन सौ से अधिक कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। इनमें से इस संग्रह के लिए 20-22 कविताएँ चुनना मुश्किल काम था। लेकिन फिर अगले ही पल यह मुश्किल आसान हो गई। यह सोचा गया कि इस संग्रह के लिए वे कविताएँ चुनी जाएँ जिनके चित्र भी अच्छे बन पड़े हैं। कविताएँ अंततः इस आधार पर ही चुनी गईं। एक मोटा आधार यह भी था कि उन कविताओं को प्राथमिकता दी जाए जो चकमक के लिए ही लिखी गई हैं।

संग्रह में 16 रचनाकारों की 21 कविताएँ हैं। इन रचनाकारों में डॉ. श्रीप्रसाद जैसे वरिष्ठ कवि भी हैं, तो उमेश चौहान जैसे शिक्षक - अभिभावक भी जिन्होंने अपने और अपने परिवेश के बच्चों की अभिव्यक्ति को कविता में प्रस्तुत किया है। कविताओं में विषयों की व्यापकता भी है। इनमें पेड़, तितली, नदी, पहाड़, मौसम, स्कूल, घर, खेत सब कुछ मौजूद है - यहाँ तक कि बिजूका भी। पर नए बिम्बों में, नई नज़र से। और क्या-क्या है? यह तो कविताएँ पढ़कर ही जाना जा सकता है।

आमतौर पर रचनाओं को चित्रित करते समय चित्रों पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। हमारी यह समझ रही है कि चित्र अगर अच्छे हों तो रचना के कथ्य को और अधिक उभार देते हैं। वे रचना में चार-चाँद लगा देते हैं। इसीलिए चकमक में चित्रों को भी उतना ही महत्व दिया जाता है, जितना किसी लिखित रचना को। चकमक का एक दृष्टिकोण यह भी रहा है कि चित्रों में एकरसता से बचा जाए। इसी बात को ध्यान में रखकर हर शैली के चित्रकार से चित्र बनवाए गए हैं। चाहे वह मधुबनी और वरली जैसी लोककला हो चाहे आदिवासी कला। चकमक ने यह भी पाया कि सभी शैलियाँ रचना को सम्पूर्णता प्रदान करती हैं। इस संग्रह में भी कला का यह संसार देखा जा सकता है।

कविताओं तथा चित्रों को इस संकलन के रूप में पुनः प्रकाशित करने के लिए रचनाकारों तथा चित्रकारों से हमें सहज और सहर्ष रूप से अनुमति मिली है। इसके लिए हम इन सभी के आभारी हैं।

चकमक के नज़रिए से बच्चों के लिए कविताएँ कैसी हों, यह संग्रह इसका भी उदाहरण बने, ऐसी अपेक्षा है। यह अपेक्षा किस हद तक पूरी होती है, यह तो समय बताएगा। उम्मीद है कि इन कविताओं को बच्चे, बड़े सभी पढ़ेंगे और गुनगुनाएँगे।

एकलव्य समूह

जनवरी, 1998

कौन-कौन सी कविताएँ हैं?

नीम

हरीश निगम

चित्रः आनन्द सिंह श्याम

तुम नहीं कहाँ

डॉ. श्रीप्रसाद

चित्रः जनगण सिंह श्याम

बाँकी-बाँकी धूप

दामोदर अग्रवाल

चित्रः विवेक

घर प्यारा

दिविक रमेश

चित्रः मीनाक्षी

काँप रहे सब थर-थर!

राजनारायण चौधरी

चित्रः सबीना सभरवाल

तितली लौट आई

डॉ. शोभनाथ 'लाल'

चित्रः आशा शर्मा

वर्षा दीदी

गिरिजा गुलश्रेष्ठ

चित्रः शोभा घारे

नदी यहाँ पर

डॉ. श्रीप्रसाद

चित्रः जनगण सिंह श्याम

बिटिया चली स्कूल

रमेश दवे

चित्रः नर्मदा प्रसाद

पेड़

राजा चौरसिया

चित्रः हुताराम अधिकारी

इन्द्रवधूटी

जगदीशचन्द्र शर्मा

चित्रः जया

इच्छा

डॉ. श्रीप्रसाद

चित्रः नर्मदा प्रसाद

जीवन जाता यहीं ठहर!

भगवतीप्रसाद द्विवेदी

चित्रः तपेन्द्र झा

झम्म-झमाझम

रामवचन सिंह 'आनन्द'

चित्रः विवेक

बहुत हुआ

हरीश निगम

चित्रः आशा शर्मा

बीज बनेंगे पेड़

विजय गुप्त

चित्रः सबीना सभरवाल

जंगल कैसा लगे निराला

राजनारायण चौधरी

चित्रः आनन्द सिंह श्याम

उड़ो-उड़ो! उड़ो-उड़ो!

नवीन सागर

चित्रः सबीना सभरवाल

बिजूका

भगवतीप्रसाद द्विवेदी

चित्रः भज्जू श्याम

स्कूल की घण्टी

प्रेमशंकर रघुवंशी

चित्रः हुताराम अधिकारी

पापा लिख दो किताब

उमेश चौहान

चित्रः विवेक

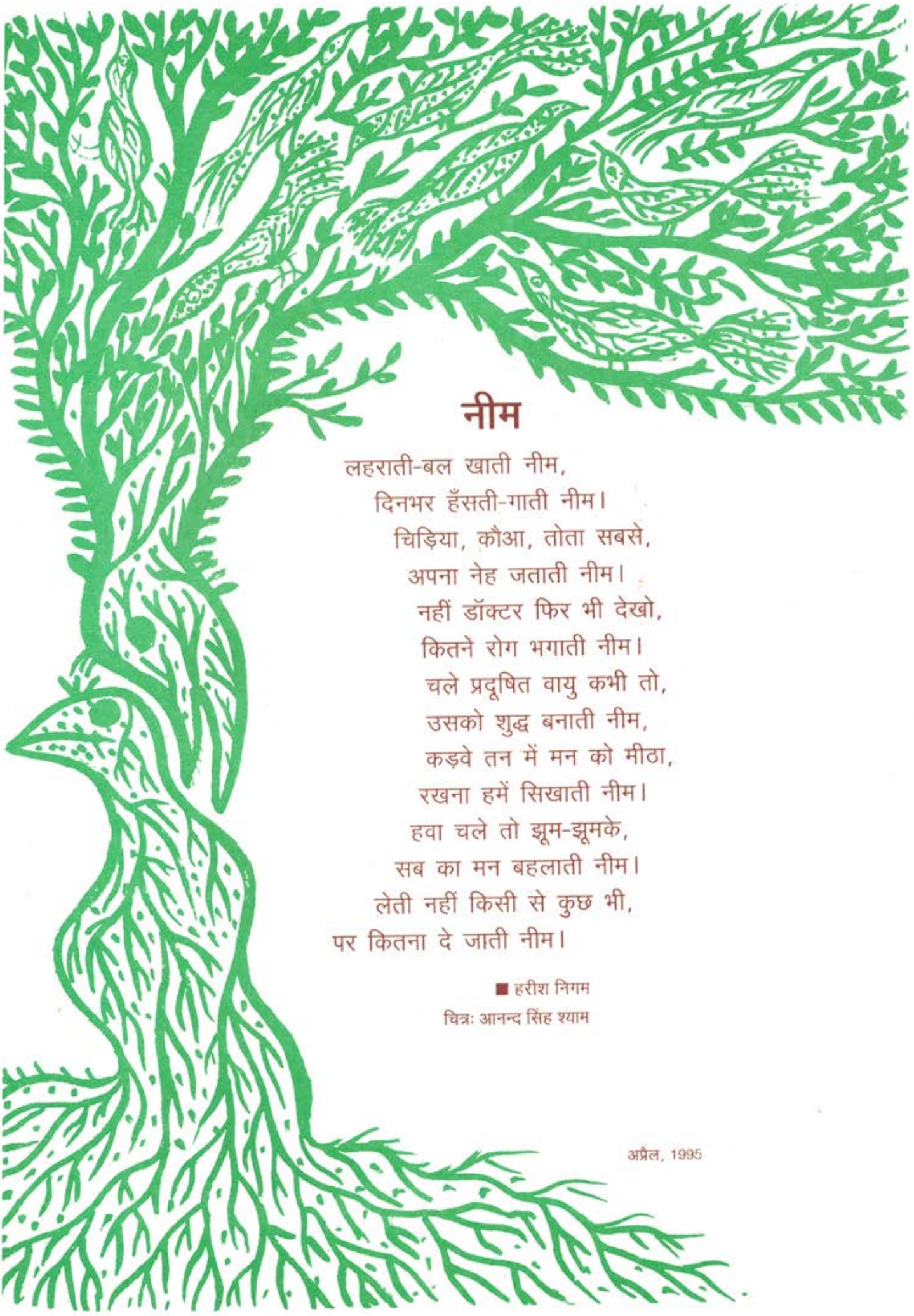

नीम

लहराती-बल खाती नीम,
दिनभर हँसती-गाती नीम।
चिड़िया, कौआ, तोता सबसे,
अपना नेह जताती नीम।
नहीं डॉक्टर फिर भी देखो,
कितने रोग भगाती नीम।
चले प्रदूषित वायु कभी तो,
उसको शुद्ध बनाती नीम,
कड़वे तन में मन को मीठा,
रखना हमें सिखाती नीम।
हवा चले तो झूम-झूमके,
सब का मन बहलाती नीम।
लेती नहीं किसी से कुछ भी,
पर कितना दे जाती नीम।

■ हरीश निगम

चित्रः आनन्द सिंह श्याम

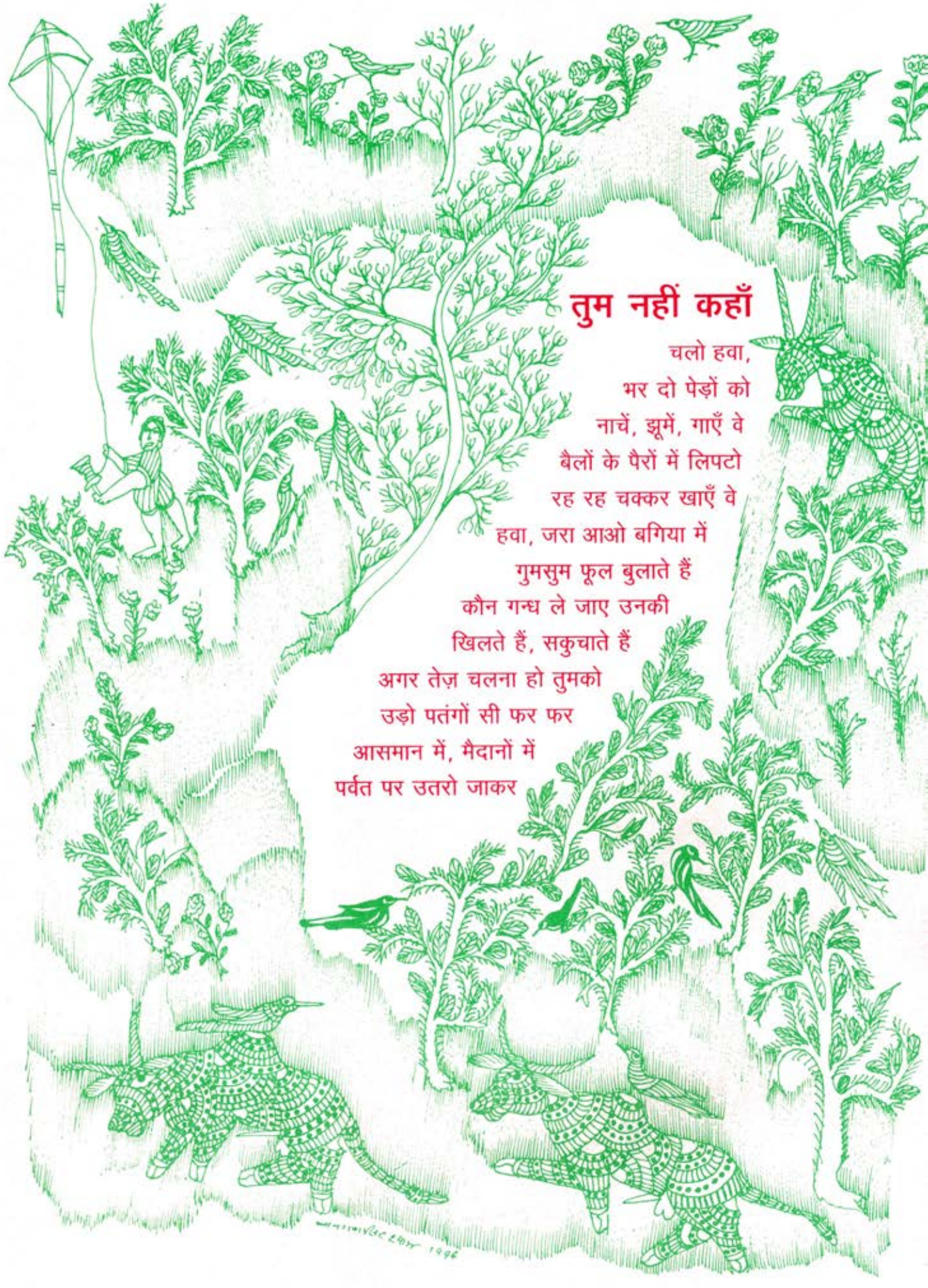

तुम नहीं कहाँ

चलो हवा,
भर दो पेड़ों को
नाचें, झूमें, गाएँ वे
बैलों के पैरों में लिपटो
रह रह चक्कर खाएँ वे
हवा, जरा आओ बगिया में
गुमसुम फूल बुलाते हैं
कौन गन्ध ले जाए उनकी
खिलते हैं, सकुचाते हैं
अगर तेज़ चलना हो तुमको
उड़ो पतंगों सी फर फर
आसमान में, मैदानों में
पर्वत पर उतरो जाकर

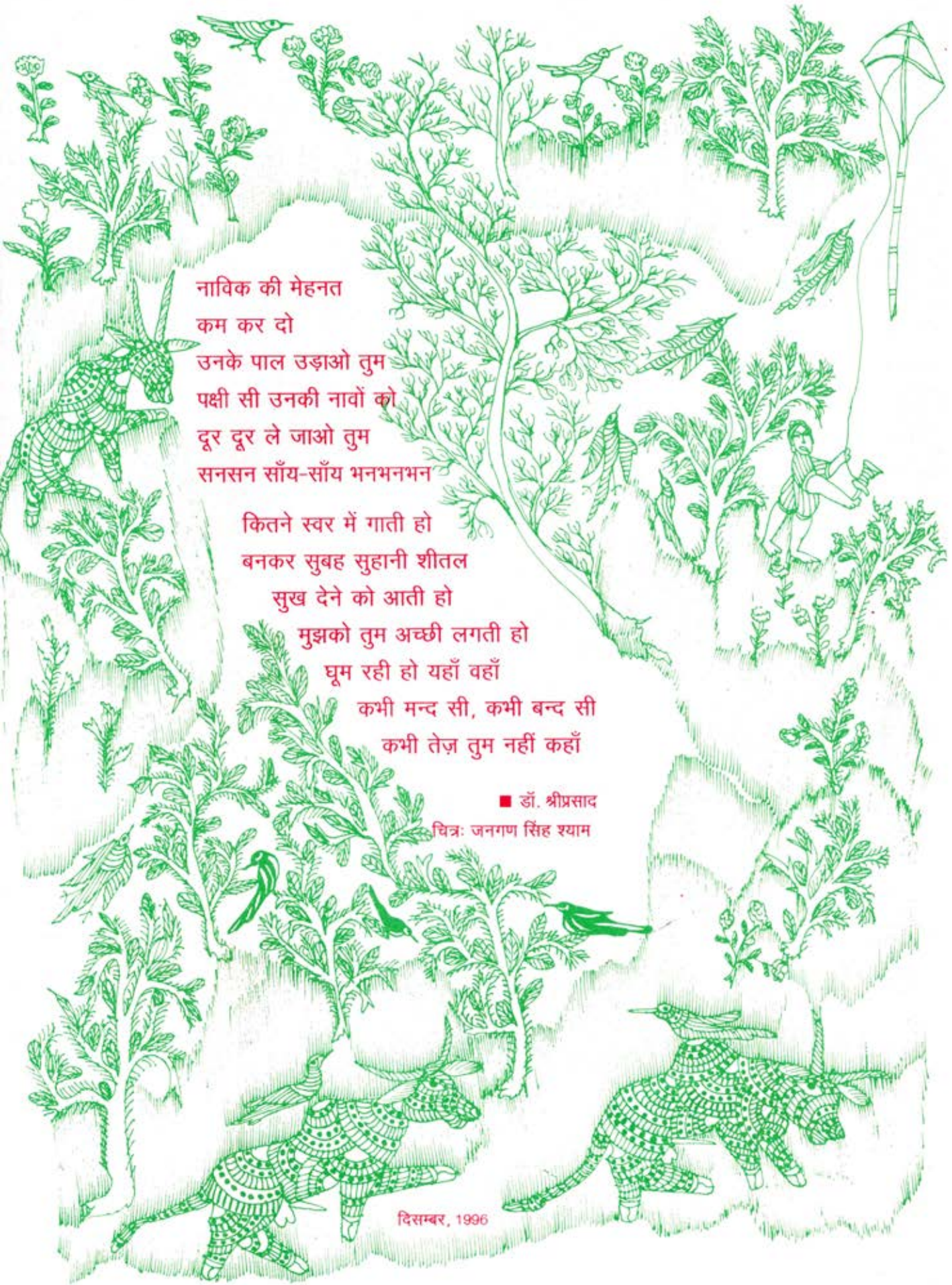

नाविक की मेहनत
कम कर दो
उनके पाल उड़ाओ तुम
पक्षी सी उनकी नावों को
दूर दूर ले जाओ तुम
सनसन साँय-साँय भनभनभन

कितने स्वर में गाती हो
बनकर सुबह सुहानी शीतल
सुख देने को आती हो
मुझको तुम अच्छी लगती हो
घूम रही हो यहाँ वहाँ
कभी मन्द सी, कभी बन्द सी
कभी तेज़ तुम नहीं कहाँ

■ डॉ. श्रीप्रसाद
चित्रः जनगण सिंह श्याम

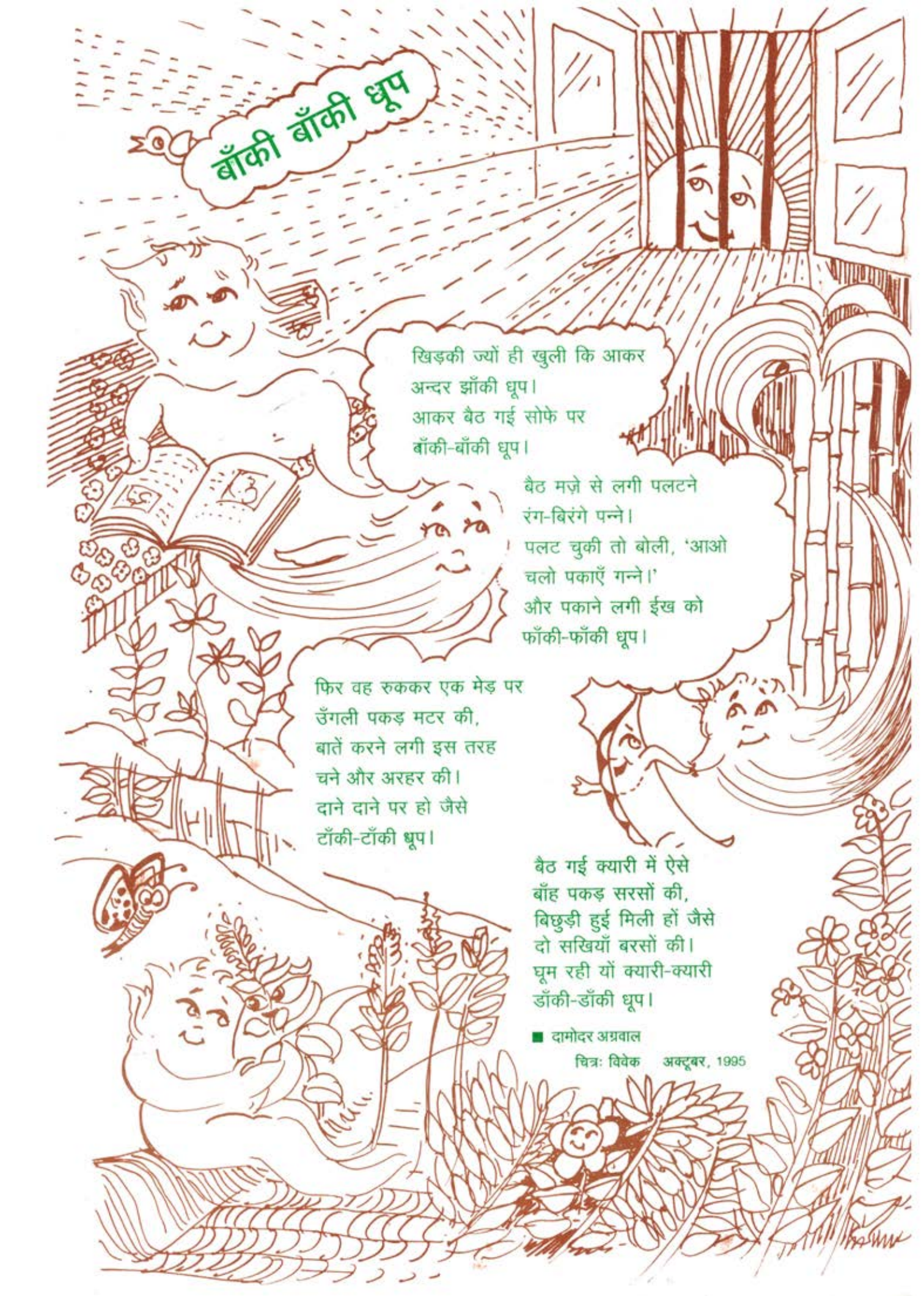

बाँकी बाँकी धूप

खिड़की ज्यों ही खुली कि आकर
अन्दर झाँकी धूप।
आकर बैठ गई सोफे पर
बाँकी-बाँकी धूप।

बैठ मज़े से लगी पलटने
रंग-बिरंगे पन्ने।
पलट चुकी तो बोली, 'आओ
चलो पकाएँ गन्ने।'
और पकाने लगी ईख को
फाँकी-फाँकी धूप।

फिर वह रुककर एक मेड़ पर
उँगली पकड़ मटर की,
बातें करने लगी इस तरह
चने और अरहर की।
दाने दाने पर हो जैसे
टाँकी-टाँकी धूप।

बैठ गई क्यारी में ऐसे
बाँह पकड़ सरसों की,
बिछुड़ी हुई मिली हों जैसे
दो सखियाँ बरसों की।
घूम रही यों क्यारी-क्यारी
डाँकी-डाँकी धूप।

■ दामोदर अग्रवाल

चित्रः विवेक   अक्टूबर, 1995

घर प्यारा

सदा यही तो कहती हो माँ
घर यह सिर्फ हमारा अपना।
लेकिन माँ कैसे मैं मानूँ
घर तो यह कितनों का अपना।

देखो तो कैसे ये चूहे
खेल रहे हैं पकड़म-पकड़ी।
कैसे मच्छर टहल रहे हैं
कैसे मस्त पड़ी है मकड़ी!

और छिपकली को तो देखो
चलती है जो गश्त लगाती!
अरे कतारें बाँधे-बाँधे
कहाँ चीटियाँ दौड़ी जातीं।

और उधर आँगन में देखो
पंछी कैसे झपट रहे हैं।
बिलकुल दीदी और मुझ जैसे
किसी बात पर झगड़ रहे हैं।

और यह देखो काक्रोच भी
दिन रात क्या यहीं ना रहते
क्यों रहते ये इस घर में जो
इसे ना अपना घर समझते।

इसीलिए तो कहता हूँ माँ
घर ना समझो सिर्फ हमारा
सदा-सदा से जो भी रहता
सबका ही है घर यह प्यारा।

■ दिविक रमेश
चित्रः मीनाक्षी

नवम्बर-दिसम्बर, 1993

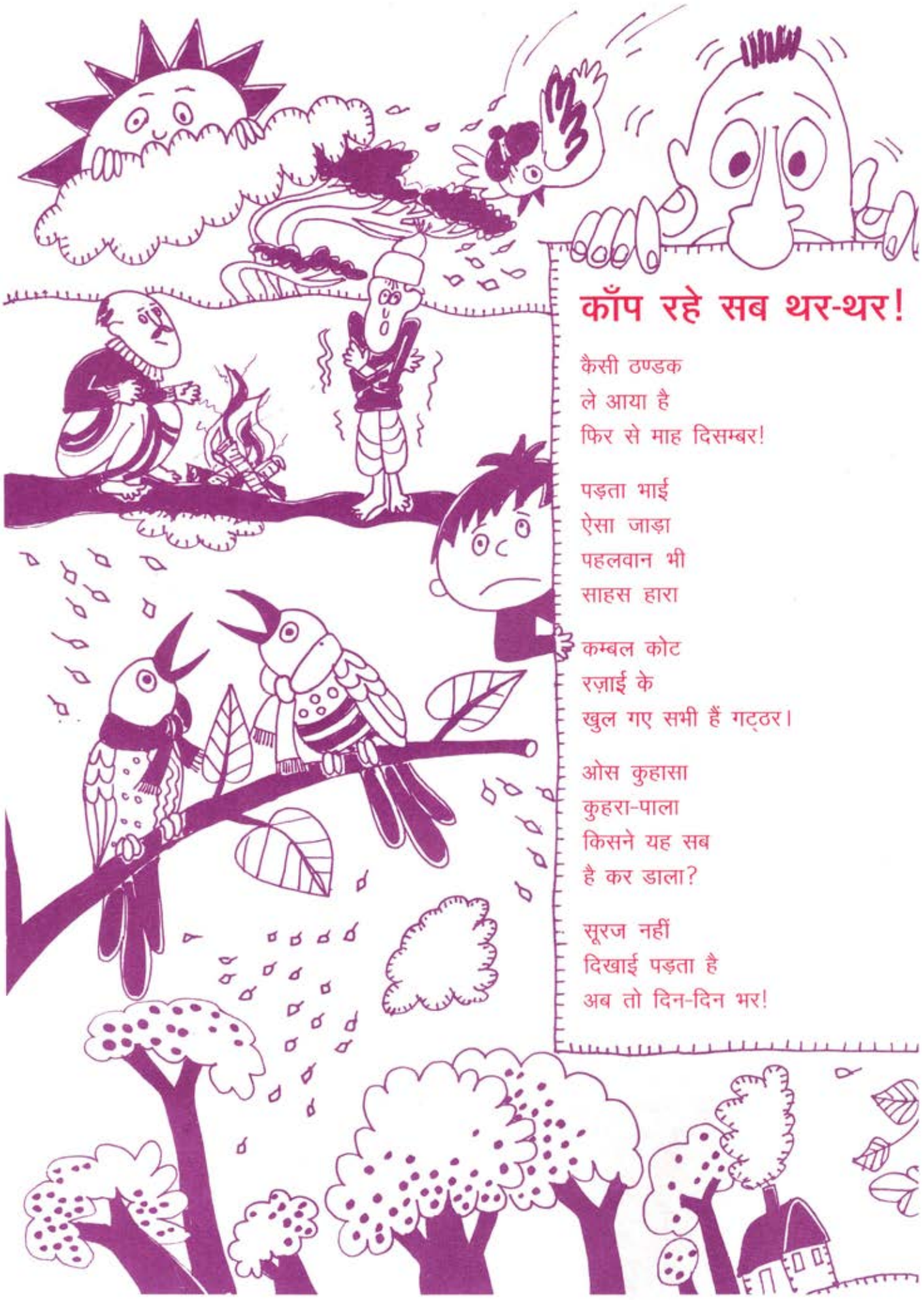

काँप रहे सब थर-थर!

कैसी ठण्डक
ले आया है
फिर से माह दिसम्बर!

पड़ता भाई
ऐसा जाड़ा
पहलवान भी
साहस हारा

कम्बल कोट
रज़ाई के
खुल गए सभी हैं गट्ठर।

ओस कुहासा
कुहरा-पाला
किसने यह सब
है कर डाला?

सूरज नहीं
दिखाई पड़ता है
अब तो दिन-दिन भर!

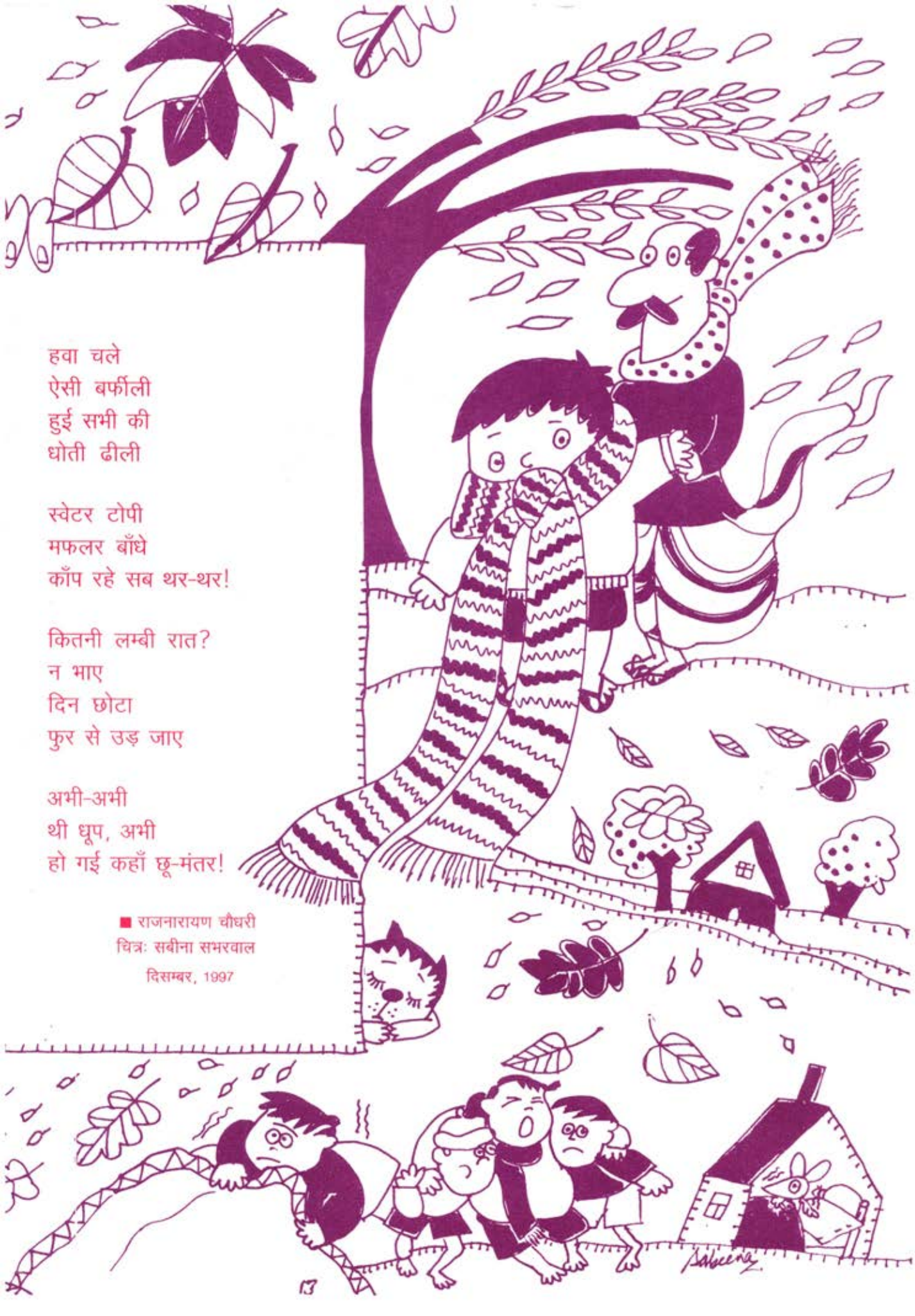

हवा चले
ऐसी बर्फीली
हुई सभी की
धोती ढीली

स्वेटर टोपी
मफलर बाँधे
काँप रहे सब थर-थर!

कितनी लम्बी रात?
न भाए
दिन छोटा
फुर से उड़ जाए

अभी-अभी
थी धूप, अभी
हो गई कहाँ छू-मंतर!

■ राजनारायण चौधरी
चित्रः सबीना सभरवाल
दिसम्बर, 1997

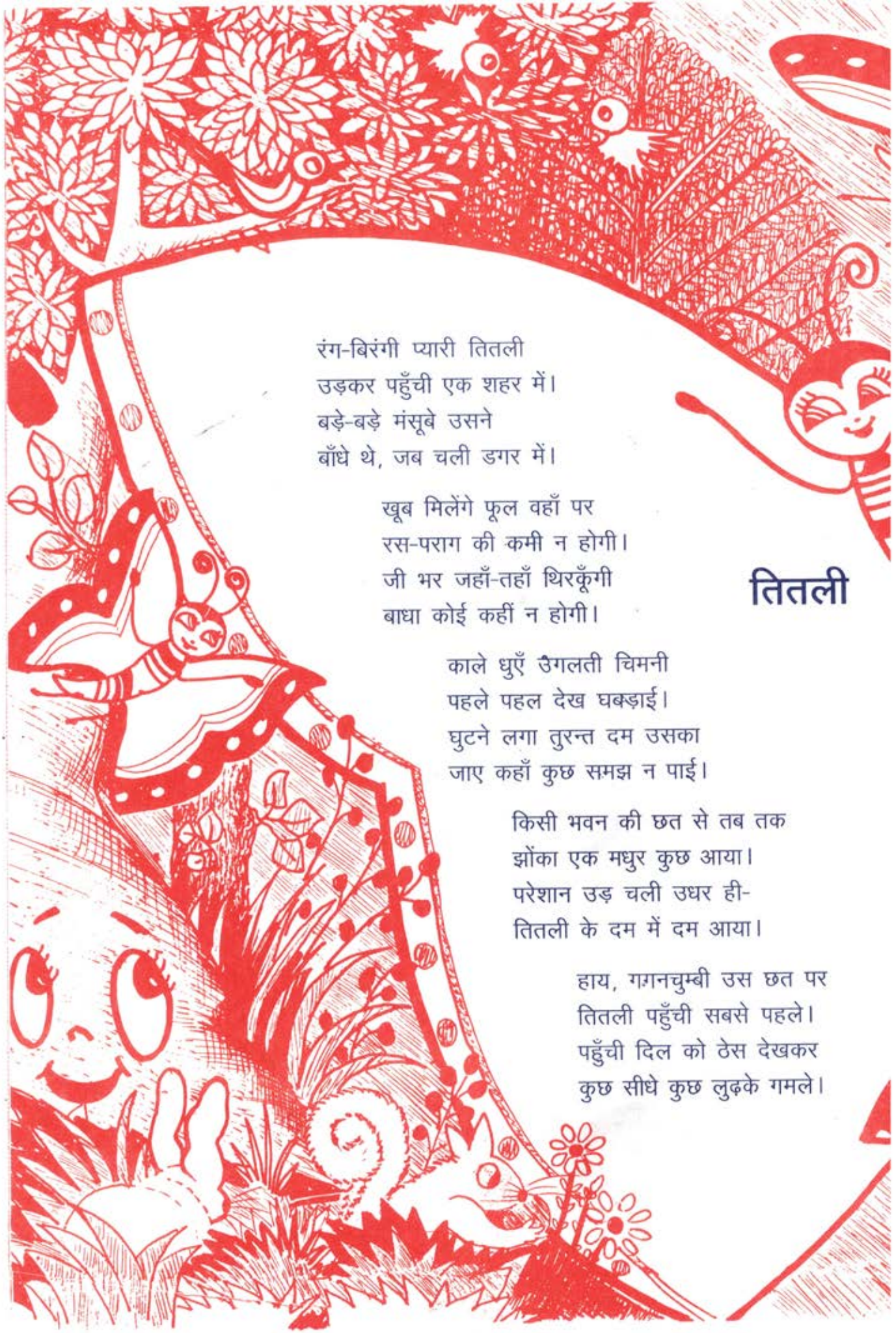

तितली

रंग-बिरंगी प्यारी तितली
उड़कर पहुँची एक शहर में।
बड़े-बड़े मंसूबे उसने
बाँधे थे, जब चली डगर में।

खूब मिलेंगे फूल वहाँ पर
रस-पराग की कमी न होगी।
जी भर जहाँ-तहाँ थिरकूँगी
बाधा कोई कहीं न होगी।

काले धुएँ उगलती चिमनी
पहले पहल देख घबड़ाई।
घुटने लगा तुरन्त दम उसका
जाए कहाँ कुछ समझ न पाई।

किसी भवन की छत से तब तक
झोंका एक मधुर कुछ आया।
परेशान उड़ चली उधर ही-
तितली के दम में दम आया।

हाय, गगनचुम्बी उस छत पर
तितली पहुँची सबसे पहले।
पहुँची दिल को ठेस देखकर
कुछ सीधे कुछ लुढ़के गमले।

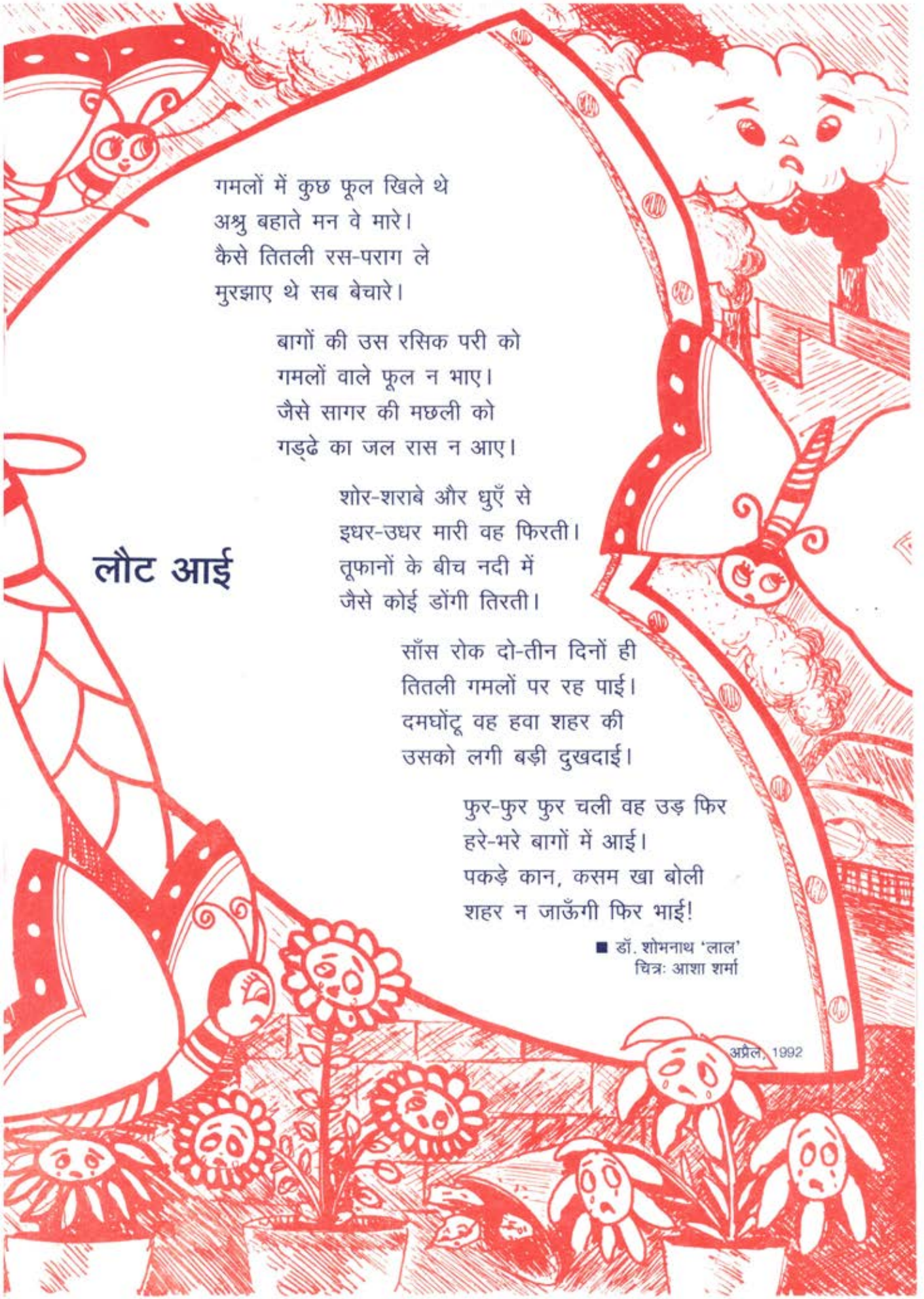

लौट आई

गमलों में कुछ फूल खिले थे
अश्रु बहाते मन वे मारे।
कैसे तितली रस-पराग ले
मुरझाए थे सब बेचारे।

बागों की उस रसिक परी को
गमलों वाले फूल न भाए।
जैसे सागर की मछली को
गड्ढे का जल रास न आए।

शोर-शराबे और धुएँ से
इधर-उधर मारी वह फिरती।
तूफानों के बीच नदी में
जैसे कोई डोंगी तिरती।

साँस रोक दो-तीन दिनों ही
तितली गमलों पर रह पाई।
दमघोंटू वह हवा शहर की
उसको लगी बड़ी दुखदाई।

फुर-फुर फुर चली वह उड़ फिर
हरे-भरे बागों में आई।
पकड़े कान, कसम खा बोली
शहर न जाऊँगी फिर भाई!

■ डॉ. शोभनाथ 'लाल'
चित्रः आशा शर्मा

वर्षा दीदी

दूर देश में रहकर आई
आठ महीने
शरमाती, मुस्काती
छम छम वर्षा दीदी
सोने की पायल छनकाती

देखो आँखें चमकीं सबकी
खिल गए चेहरे
हवा हिंडोलों में झूले
गाएँ गीत पखेरू-पीपल
मोर पपीहा श्यामा कोयल
झन झन झींगुर
टर् टर् मेंढक
उमड़े नदी तलैया
धूल नहाती गोरैया
लेके आए 'सूरज भैया'
चढ़कर 'पछुआ' मेल
तरस रही थी धरती मैया
गले लगाया आकुल होकर
आँखे भर आईं
बरसे आँसू टप... टप... टप...
ओहो! संग में दूल्हा बादल!
डाले हैं आँखों में काजल
पहने काला सूट ठाठ से... जँचते हैं.

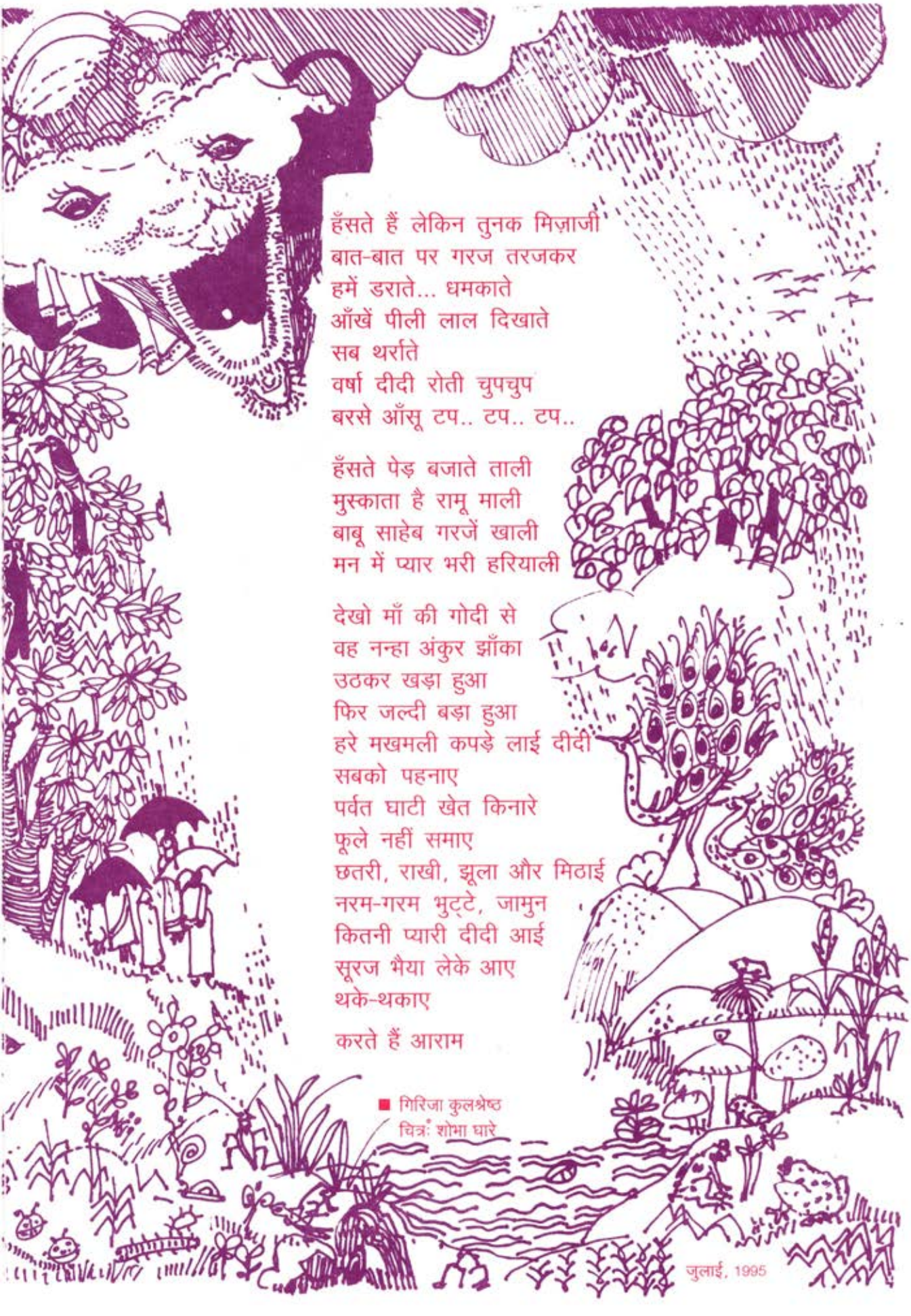

हँसते हैं लेकिन तुनक मिज़ाजी
बात-बात पर गरज तरजकर
हमें डराते... धमकाते
आँखें पीली लाल दिखाते
सब थर्राते
वर्षा दीदी रोती चुपचुप
बरसे आँसू टप.. टप.. टप..

हँसते पेड़ बजाते ताली
मुस्काता है रामू माली
बाबू साहेब गरजें खाली
मन में प्यार भरी हरियाली

देखो माँ की गोदी से
वह नन्हा अंकुर झाँका
उठकर खड़ा हुआ
फिर जल्दी बड़ा हुआ
हरे मखमली कपड़े लाई दीदी
सबको पहनाए
पर्वत घाटी खेत किनारे
फूले नहीं समाए
छतरी, राखी, झूला और मिठाई
नरम-गरम भुट्टे, जामुन
कितनी प्यारी दीदी आई
सूरज भैया लेके आए
थके-थकाए

करते हैं आराम

■ गिरिजा कुलश्रेष्ठ
चित्रः शोभा घारे

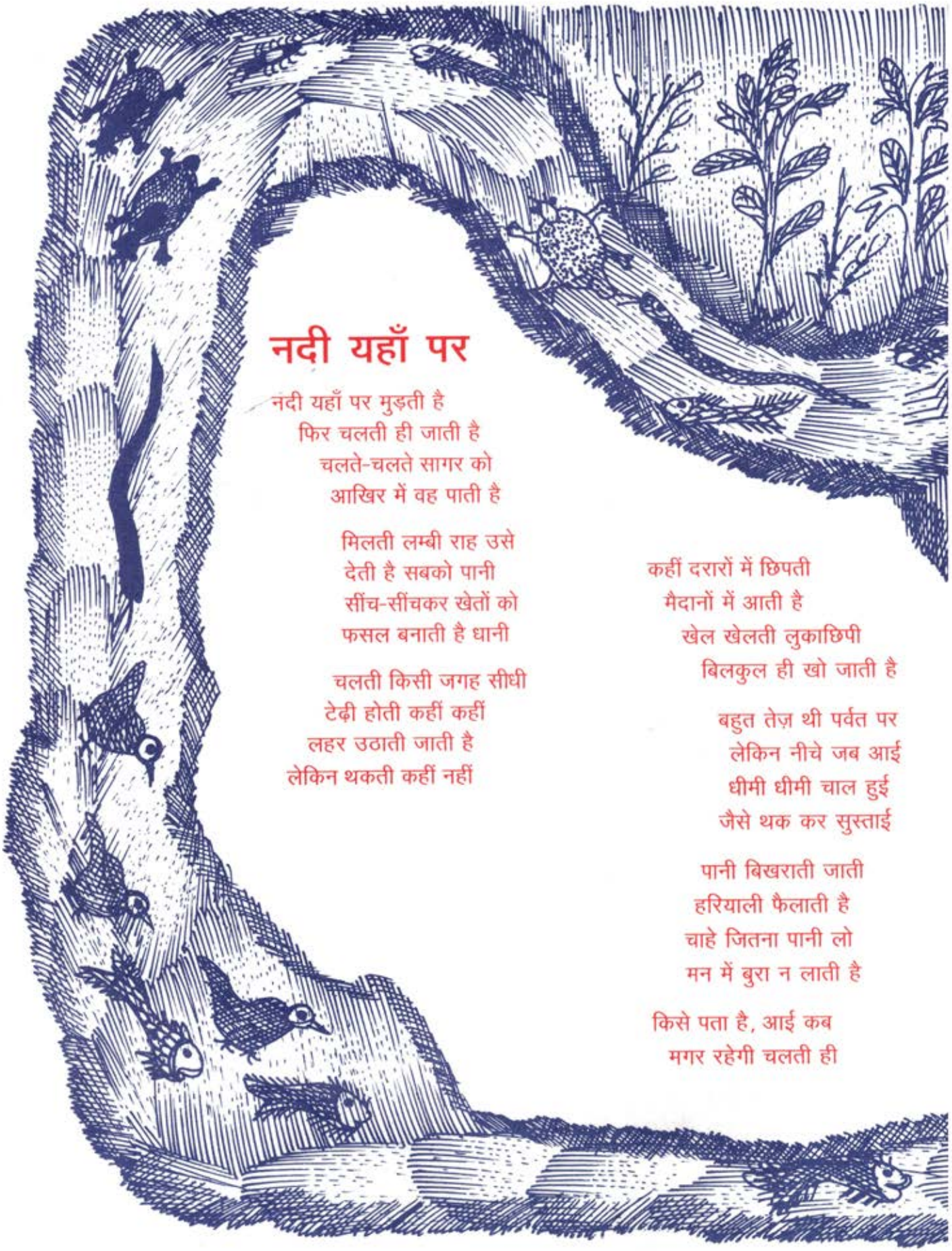

नदी यहाँ पर

नदी यहाँ पर मुड़ती है
फिर चलती ही जाती है
चलते-चलते सागर को
आखिर में वह पाती है

मिलती लम्बी राह उसे
देती है सबको पानी
सींच-सींचकर खेतों को
फसल बनाती है धानी

चलती किसी जगह सीधी
टेढ़ी होती कहीं कहीं
लहर उठाती जाती है
लेकिन थकती कहीं नहीं

कहीं दरारों में छिपती
मैदानों में आती है
खेल खेलती लुकाछिपी
बिलकुल ही खो जाती है

बहुत तेज़ थी पर्वत पर
लेकिन नीचे जब आई
धीमी धीमी चाल हुई
जैसे थक कर सुस्ताई

पानी बिखराती जाती
हरियाली फैलाती है
चाहे जितना पानी लो
मन में बुरा न लाती है

किसे पता है, आई कब
मगर रहेगी चलती ही

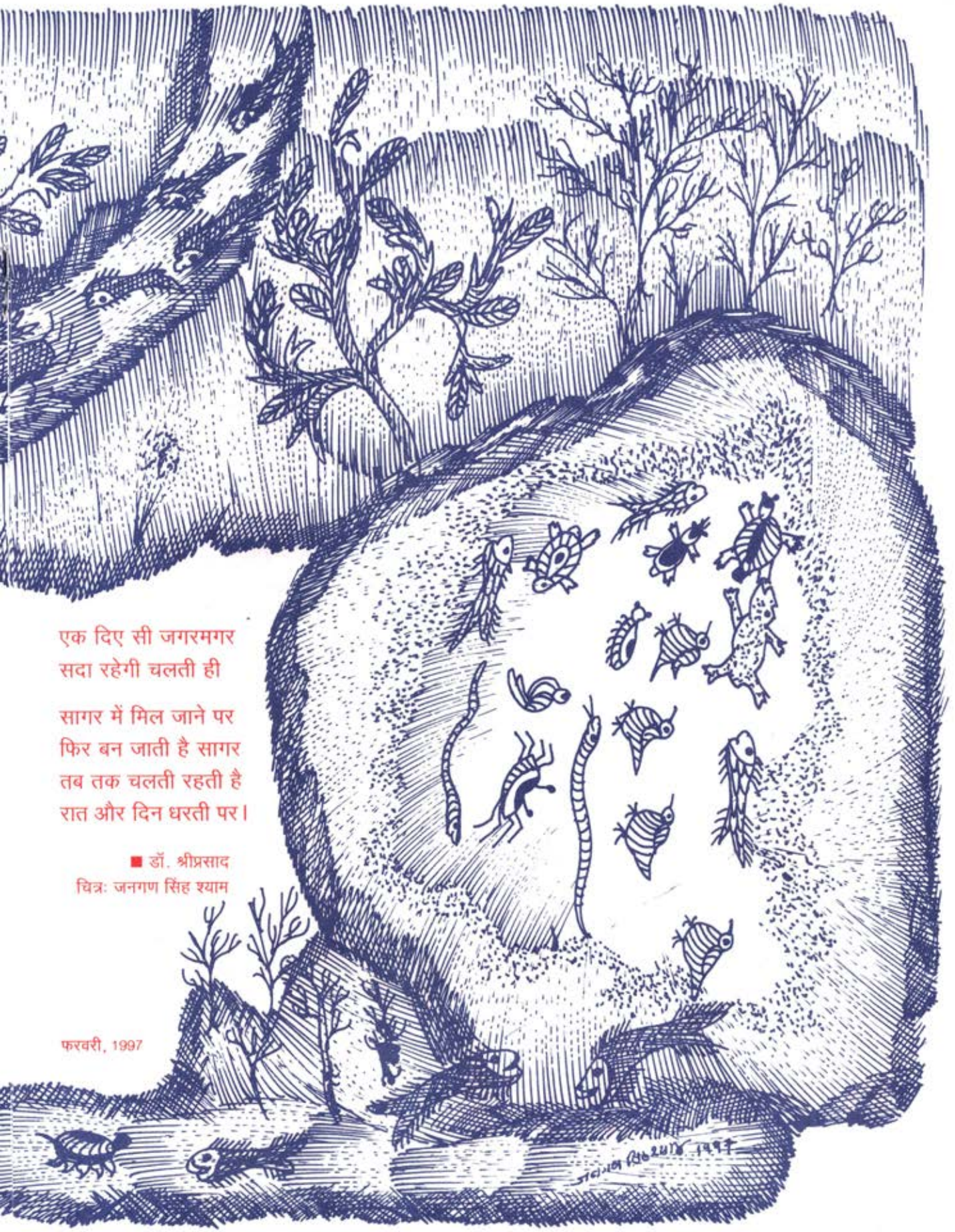

एक दिए सी जगरमगर
सदा रहेगी चलती ही

सागर में मिल जाने पर
फिर बन जाती है सागर
तब तक चलती रहती है
रात और दिन धरती पर।

■ डॉ. श्रीप्रसाद
चित्रः जनगण सिंह श्याम

फरवरी, 1997

बिटिया चली स्कूल

बिटिया चली है स्कूल, भैया बस्ता उठाए
बिटिया है बगिया का फूल, मैया हँस-हँस के गाए।

बिटिया बनेगी हुसियार
करेगी घर-भर में उजाला
बिटिया करेगी बड़ा नाम
पियेगी दूध, भर-भर के प्याला

बिटिया, काटेगी दुःख के बबूल
अब्बा खुशियाँ मनाएँ
बिटिया है बगिया का फूल
अम्मा हँस-हँस के गाए!

बिटिया-खेलेगी हर खेल
बढ़ेगी देखो आगे ही आगे
बिटिया करेगी ऐसे काम
फिरेंगे दुःख भागे ही भागे

बिटिया दौड़े तो उड़ती है धूल
सखियाँ छेड़ें, चिढ़ाएँ
बिटिया है बगिया का फूल
मैया हँस-हँस के गाए!

■ रमेश दवे
चित्रः नर्मदा प्रसाद

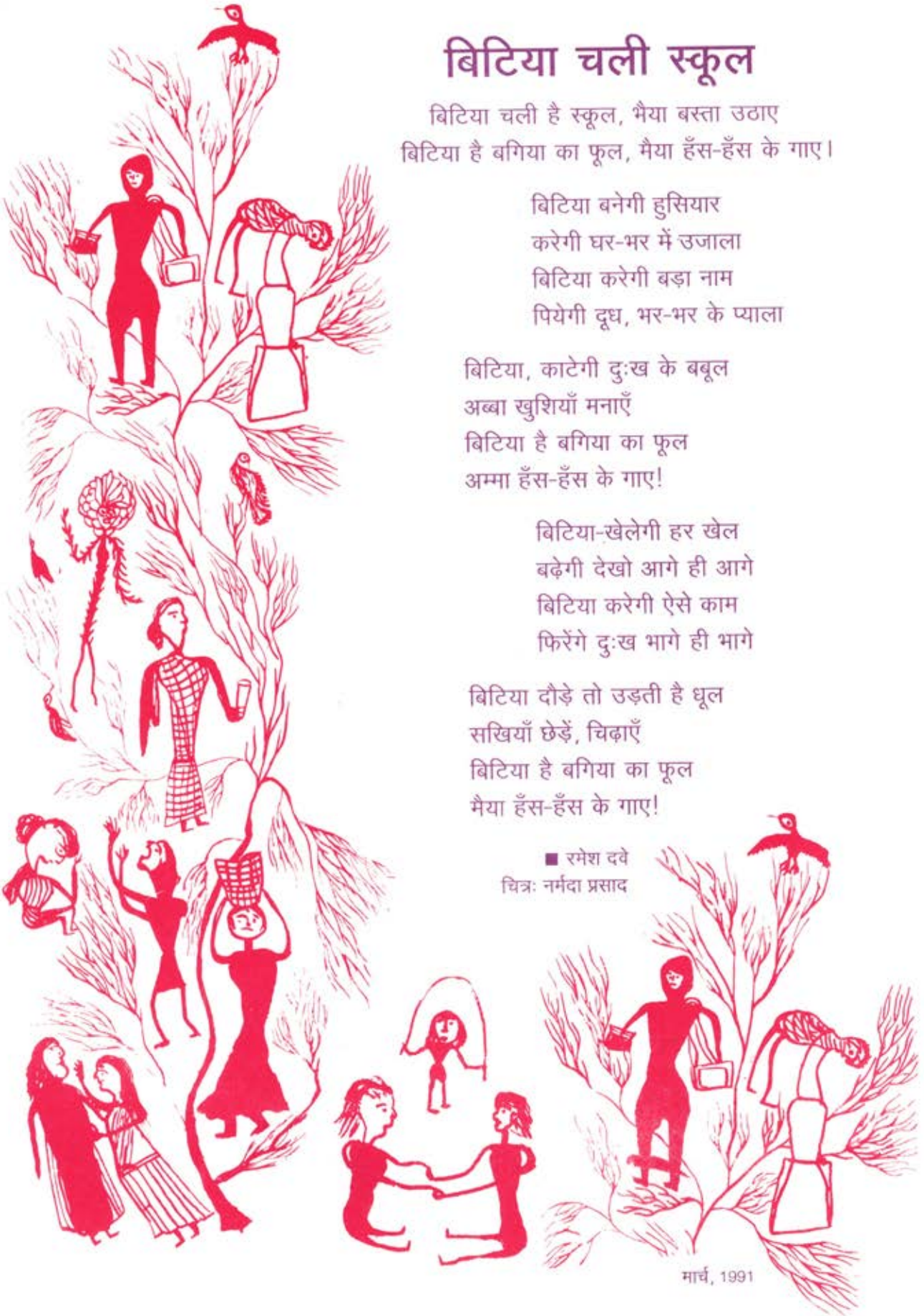

मार्च, 1991

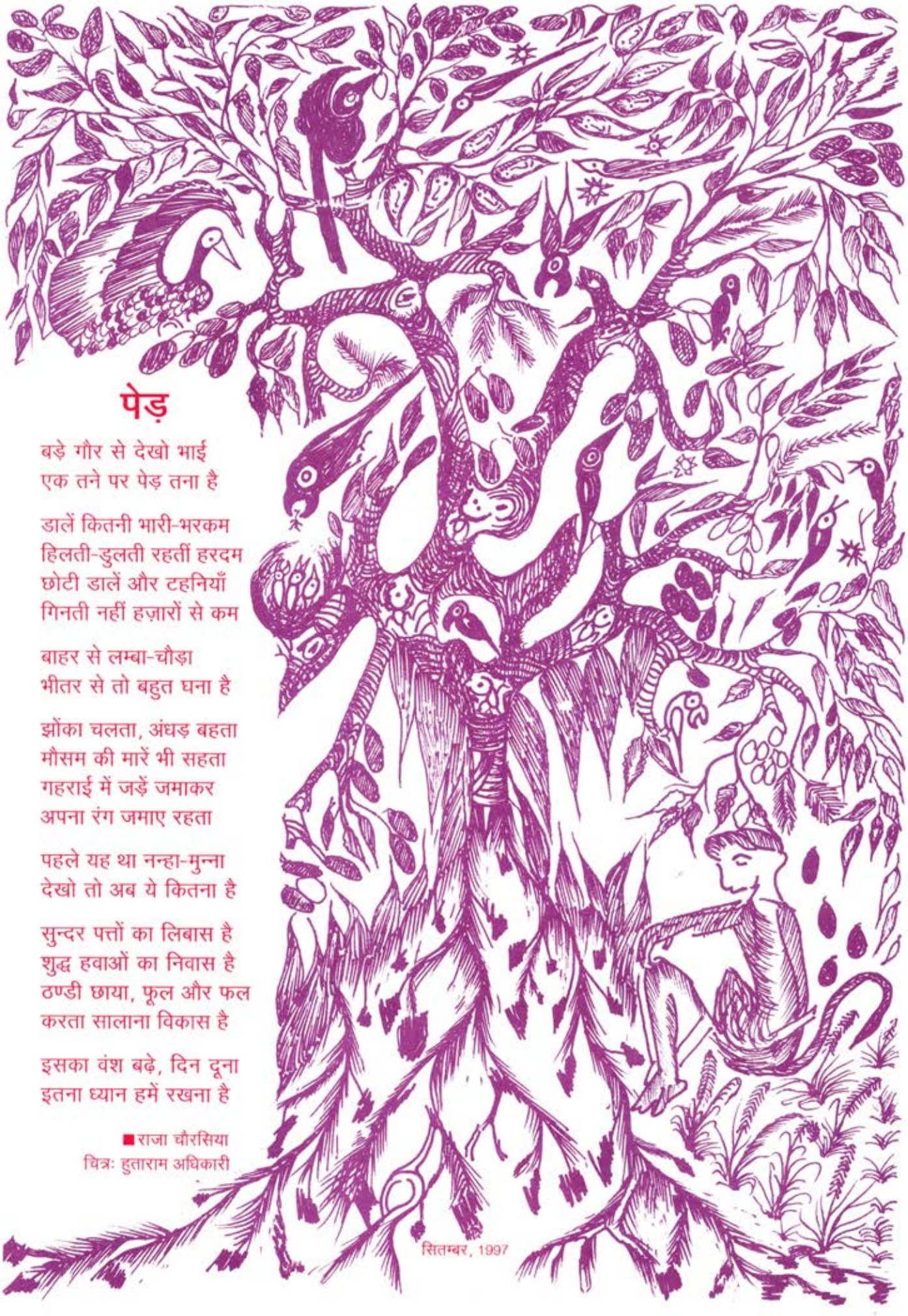

पेड़

बड़े गौर से देखो भाई
एक तने पर पेड़ तना है

डालें कितनी भारी-भरकम
हिलती-डुलती रहतीं हरदम
छोटी डालें और टहनियाँ
गिनती नहीं हज़ारों से कम

बाहर से लम्बा-चौड़ा
भीतर से तो बहुत घना है

झोंका चलता, अंधड़ बहता
मौसम की मारें भी सहता
गहराई में जड़ें जमाकर
अपना रंग जमाए रहता

पहले यह था नन्हा-मुन्ना
देखो तो अब ये कितना है

सुन्दर पत्तों का लिबास है
शुद्ध हवाओं का निवास है
ठण्डी छाया, फूल और फल
करता सालाना विकास है

इसका वंश बढ़े, दिन दूना
इतना ध्यान हमें रखना है

■ राजा चौरसिया
चित्रः हुताराम अधिकारी

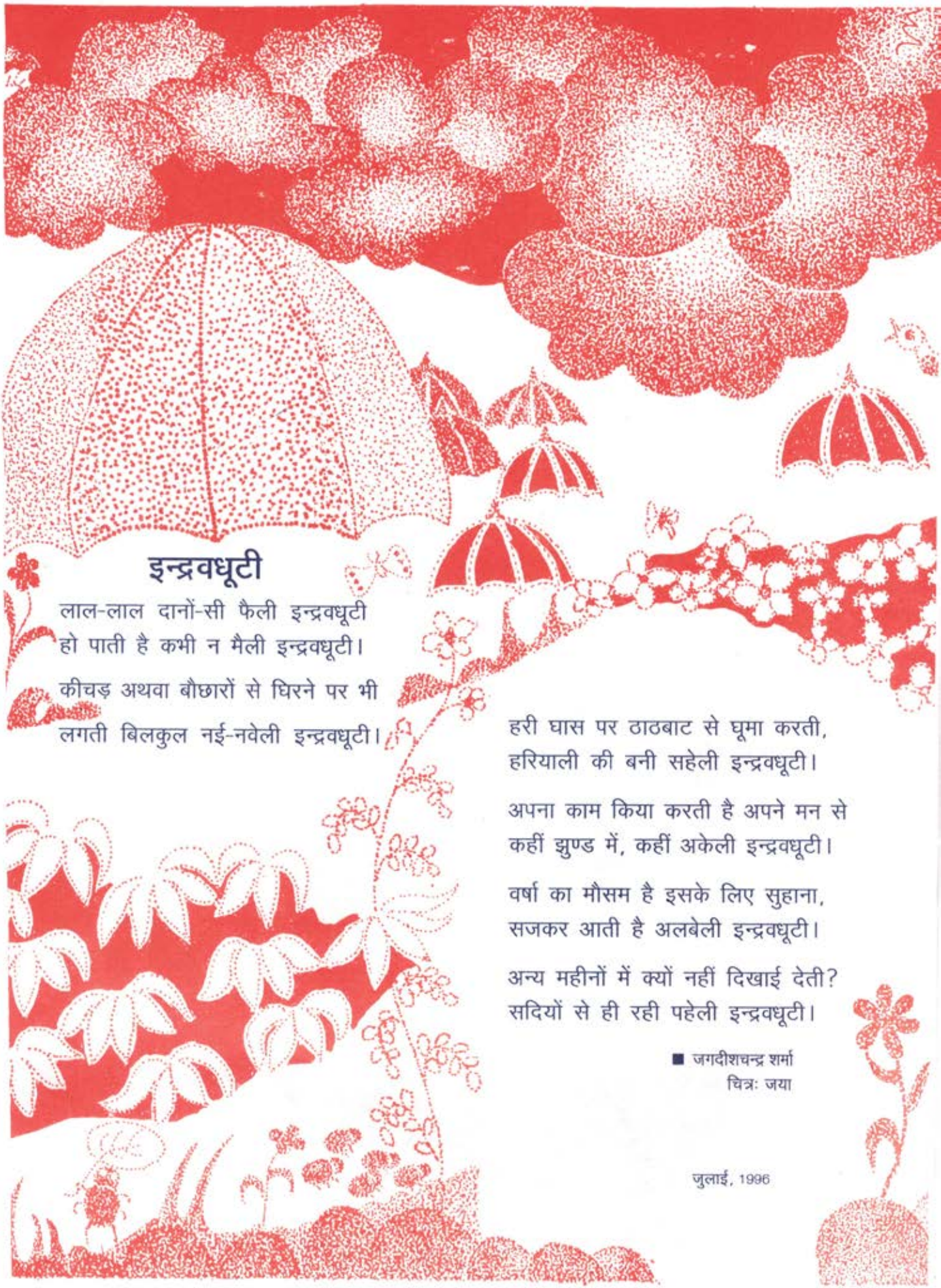

इन्द्रवधूटी

लाल-लाल दानों-सी फैली इन्द्रवधूटी
हो पाती है कभी न मैली इन्द्रवधूटी।

कीचड़ अथवा बौछारों से घिरने पर भी
लगती बिलकुल नई-नवेली इन्द्रवधूटी।

हरी घास पर ठाठबाट से घूमा करती,
हरियाली की बनी सहेली इन्द्रवधूटी।

अपना काम किया करती है अपने मन से
कहीं झुण्ड में, कहीं अकेली इन्द्रवधूटी।

वर्षा का मौसम है इसके लिए सुहाना,
सजकर आती है अलबेली इन्द्रवधूटी।

अन्य महीनों में क्यों नहीं दिखाई देती?
सदियों से ही रही पहेली इन्द्रवधूटी।

■ जगदीशचन्द्र शर्मा
चित्रः जया

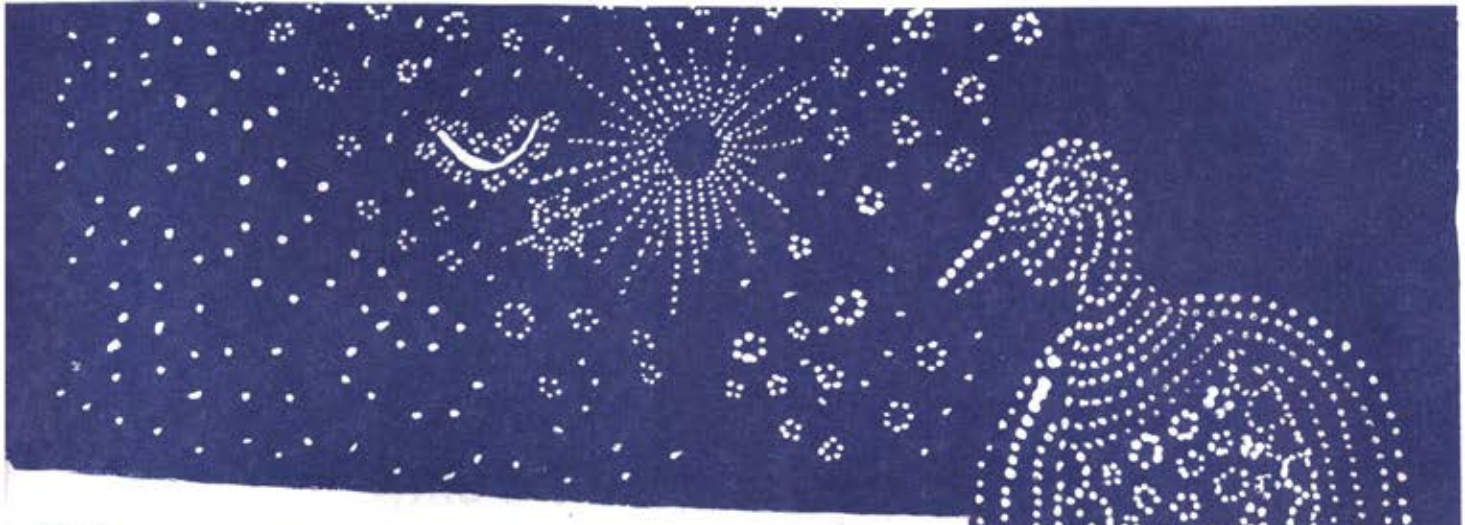

इच्छा

मेंढक की केवल इच्छा है
बादल आएँ, बरसे जल
मोर चाहता है, वह नाचे
घिर आएँ काले बादल

तितली का मन है, वह देखे
रंगबिरंगे फूल खिले
कोयल चाह रही, बसन्त की
शोभा चारों ओर मिले

खेत चाहते हैं, उग आए
हरी फसल हर ओर यहाँ
रात चाहती है, दिन आए
चिड़ियों का हो शोर यहाँ

नदी चाहती, बहे हमेशा
ऊपर नीचे उठे लहर
माँ का मन करता, खुशियों में
डूबा रहे हमारा घर

और एक इच्छा मेरी है
देखूँ मैं संसार सभी
जितने बच्चे हैं धरती पर
सबसे मिलूँ तुरन्त अभी।

■ डॉ. श्रीप्रसाद
चित्रः नर्मदा प्रसाद श्याम

मार्च, 1989

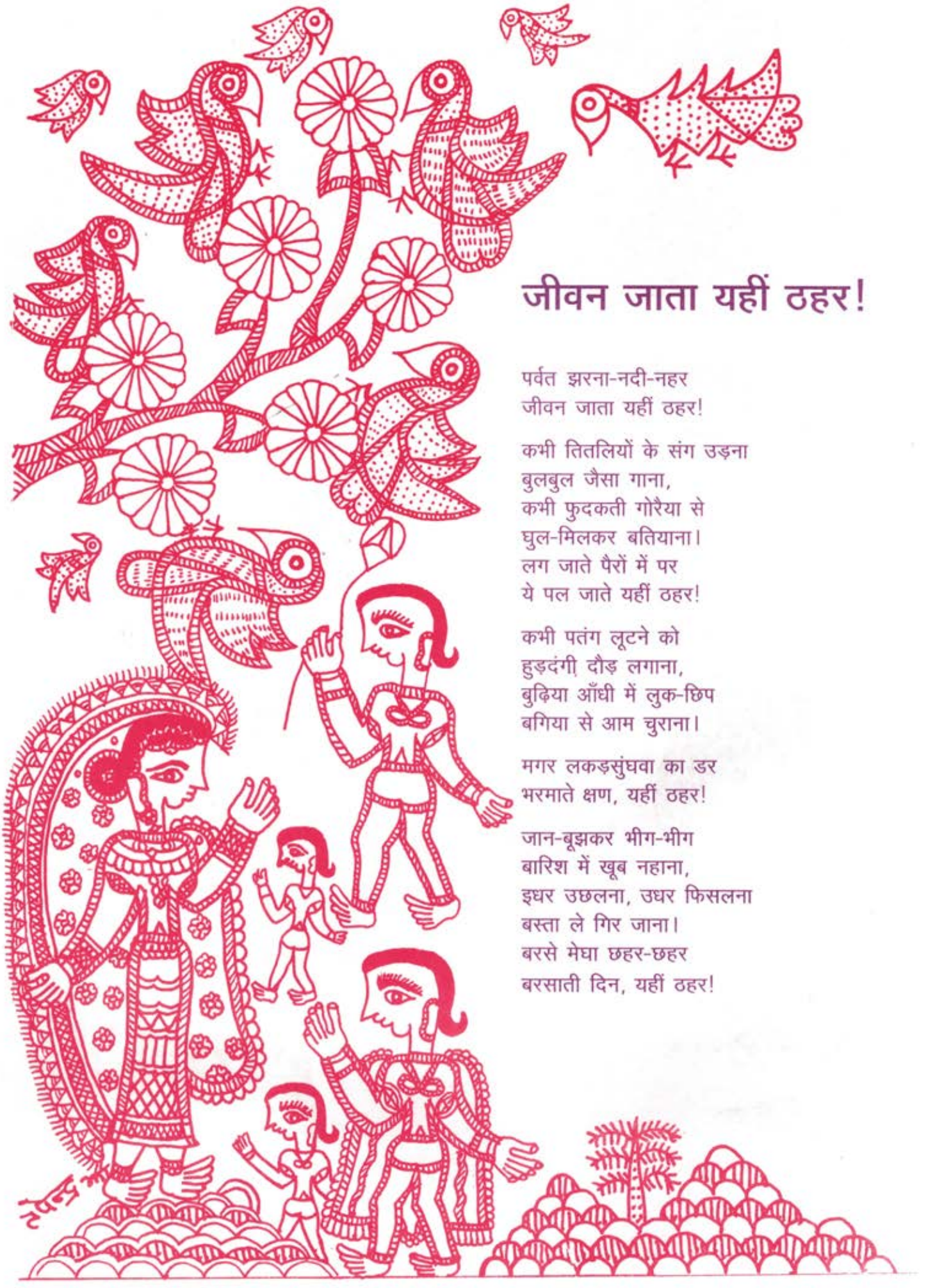

जीवन जाता यहीं ठहर!

पर्वत झरना-नदी-नहर
जीवन जाता यहीं ठहर!

कभी तितलियों के संग उड़ना
बुलबुल जैसा गाना,
कभी फुदकती गोरैया से
घुल-मिलकर बतियाना।
लग जाते पैरों में पर
ये पल जाते यहीं ठहर!

कभी पतंग लूटने को
हुड़दंगी दौड़ लगाना,
बुढ़िया आँधी में लुक-छिप
बगिया से आम चुराना।

मगर लकड़सुंघवा का डर
भरमाते क्षण, यहीं ठहर!

जान-बूझकर भीग-भीग
बारिश में खूब नहाना,
इधर उछलना, उधर फिसलना
बस्ता ले गिर जाना।
बरसे मेघा छहर-छहर
बरसाती दिन, यहीं ठहर!

ताल-तलैया में कागज़ की
नैया को तैराना,
कुत्ते, बिल्ली, बछड़ों को
ललकार, खूब दौड़ाना।

मेंढक बन करते टर्र-टर्र
रट्टू मनवा, यहीं ठहर!

कभी रूठना, टॉफी-बिस्कुट
की खातिर रिरियाना,
माँ की मीठी डाँटें सुनना
और कभी गुस्साना।

लगे दूध ज्यों रखा ज़हर
नखरीले क्षण, यहीं ठहर!

दादी माँ से ज़िद कर नियमित
कथा-कहानी सुनना,
राजा-रानी, परीलोक के
अनगिन किस्से बुनना।
खरहे-सा भागता पहर
रुक जा, थम जा, यहीं ठहर!

■ भगवती प्रसाद द्विवेदी
चित्रः तपेन्द्र झा

दिसम्बर, 1991

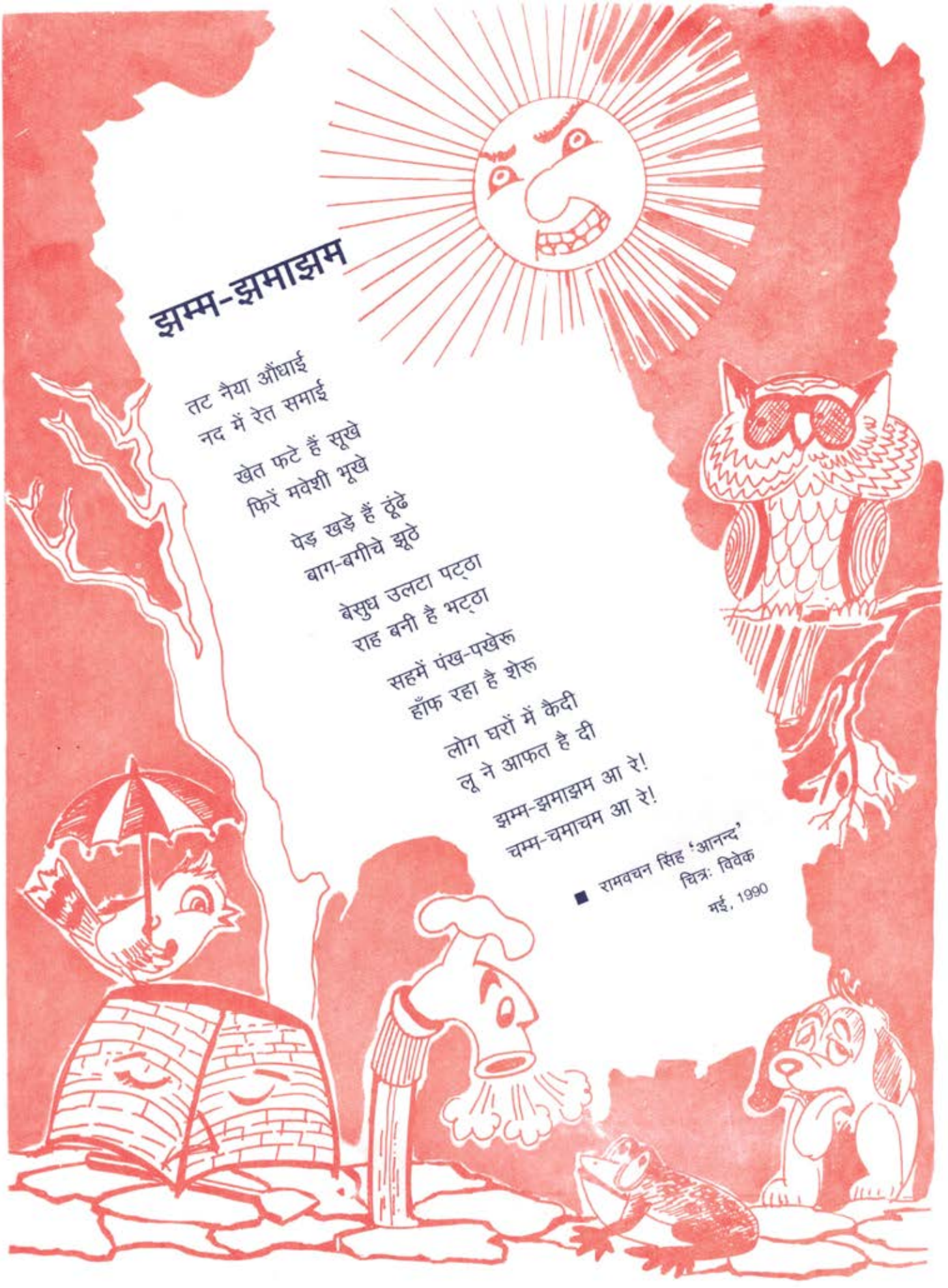

झम्म-झमाझम

तट नैया औंधाई
नद में रेत समाई

खेत फटे हैं सूखे
फिरें मवेशी भूखे

पेड़ खड़े हैं ठूंढे
बाग-बगीचे झूठे

बेसुध उलटा पट्ठा
राह बनी है भट्ठा

सहमें पंख-पखेरू
हाँफ रहा है शेरू

लोग घरों में कैदी
लू ने आफत है दी

झम्म-झमाझम आ रे!
चम्म-चमाचम आ रे!

■ रामवचन सिंह 'आनन्द'
चित्र: विवेक

मई, 1990

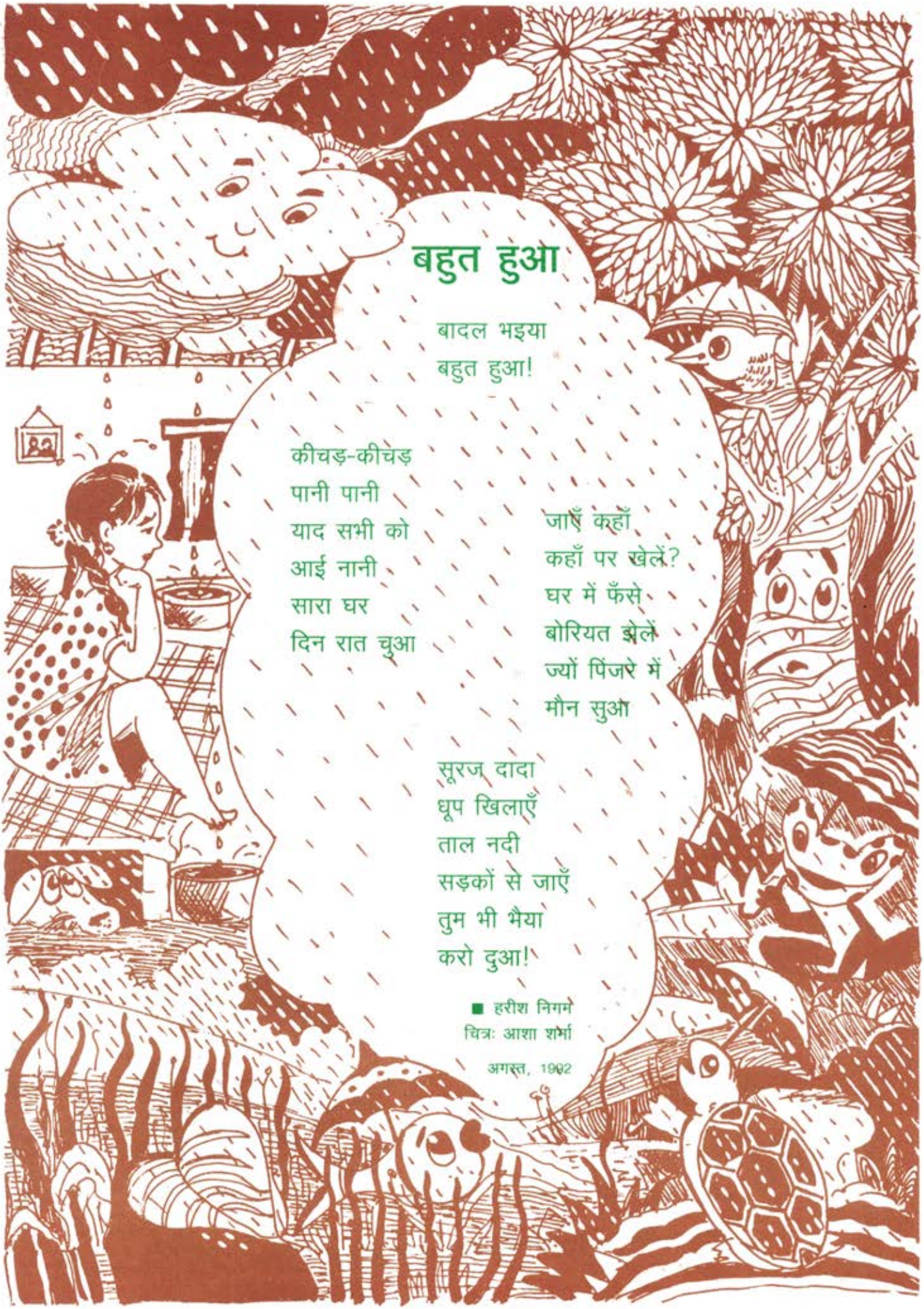

बहुत हुआ

बादल भइया
बहुत हुआ!

कीचड़-कीचड़
पानी पानी
याद सभी को
आई नानी
सारा घर
दिन रात चुआ

जाएँ कहाँ
कहाँ पर खेलें?
घर में फँसे
बोरियत झेलें
ज्यों पिंजरे में
मौन सुआ

सूरज दादा
धूप खिलाएँ
ताल नदी
सड़कों से जाएँ
तुम भी भैया
करो दुआ!

■ हरीश निगम
चित्र: आशा शर्मा

बीज बनेंगे पेड़

बीज हज़ारों
आँखें मीचे
नम मिट्टी की
चादर ओढ़े
महटियाए से
अपने बिस्तर में पड़े
हुए हैं।

कान पकड़कर
सूरज जब
होले से धकियाएगा
हड़बड़ करते भागेंगे,
मंजन कर
चाय पिएँगे
धरती के रोशनदानों से
चोरी चोरी झाँकेंगे
हरे सूट में
भौंचक्के से
एक नई दुनिया
पहचानेंगे।

हवा कहेगी झूम-झूम
वे रुमझुम-रुमझुम नाचेंगे
थक जाएँगे,
पोंछ पसीना
पानी पीकर

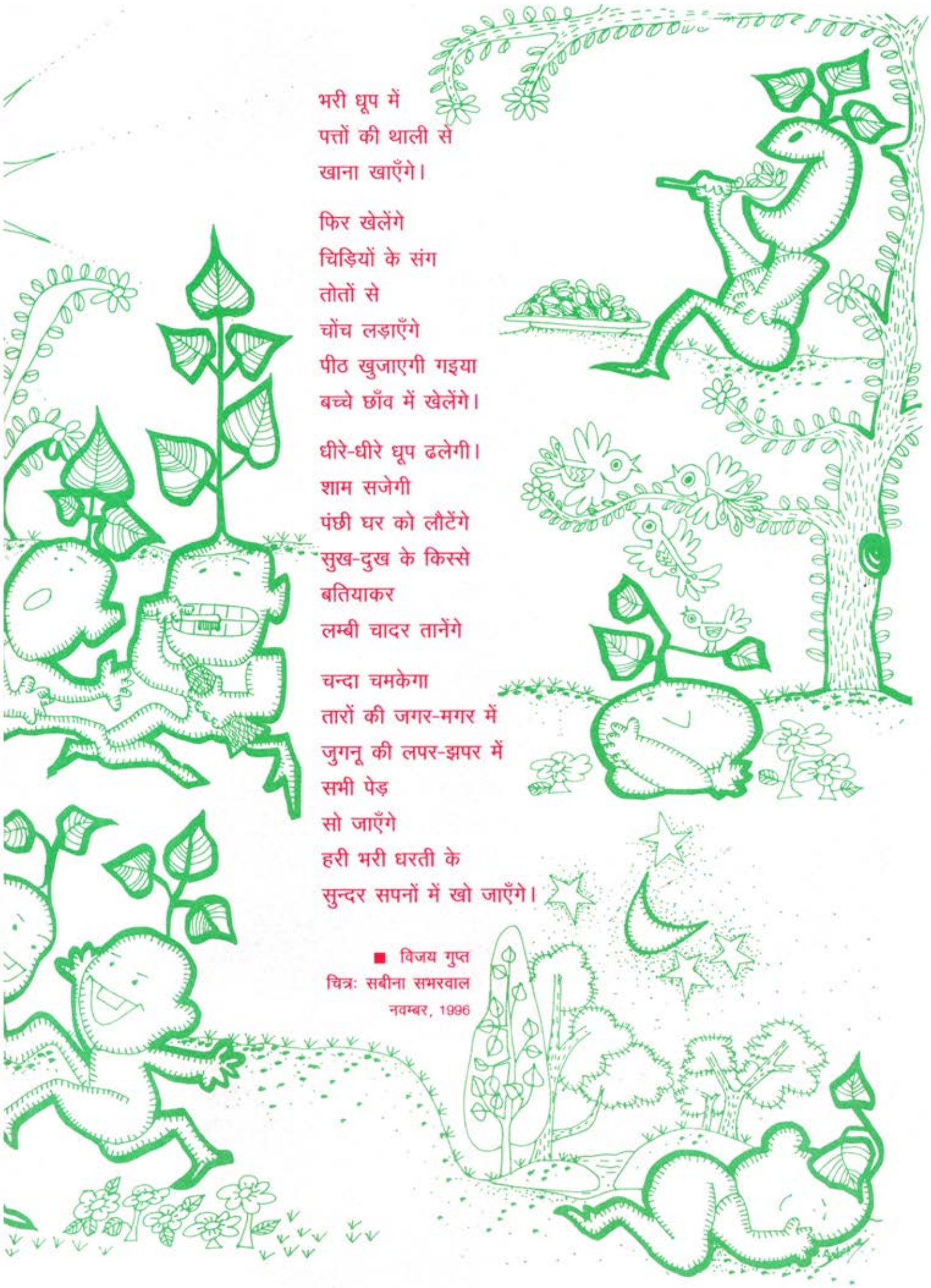

भरी धूप में
पत्तों की थाली से
खाना खाएँगे।

फिर खेलेंगे
चिड़ियों के संग
तोतों से
चोंच लड़ाएँगे
पीठ खुजाएगी गइया
बच्चे छाँव में खेलेंगे।

धीरे-धीरे धूप ढलेगी।
शाम सजेगी
पंछी घर को लौटेंगे
सुख-दुख के किस्से
बतियाकर
लम्बी चादर तानेंगे

चन्दा चमकेगा
तारों की जगर-मगर में
जुगनू की लपर-झपर में
सभी पेड़
सो जाएँगे
हरी भरी धरती के
सुन्दर सपनों में खो जाएँगे।

■ विजय गुप्त
चित्रः सबीना समरवाल
नवम्बर, 1996

जंगल कैसा लगे निराला!

अहा! विविध फल-फूलों वाला,
जंगल कैसा लगे निराला!!

पीपल हैं सागौन बाँस हैं
बरगद तेन्दू औ पलाश हैं
ताल-तमाल खजूर रसीला
सेमल महुआ खूब सजीला
कटहल कत्था रबर मसाला
जंगल कैसा लगे निराला!!

चीता हिरन भेड़िया गैया
तीतर काग बटेर गौरैया
तरह-तरह की जिनकी बोली
लगती भली सभी की टोली
पशु-पक्षी की ज्यों हो शाला!
जंगल कैसा लगे निराला!!

जंगल से है वर्षा होती
उगता है फसलों का मोती
जंगल से ही हरियाली है
हर घर-आँगन खुशियाली है

इससे ही सुख का उजियाला!
जंगल कैसा लगे निराला!!

गर्मी में जब धूप सताती
छाया तरु की हमें बचाती
जड़ी बूटियाँ है यह देता
रोग-शोक सारा हर लेता
यह मंगल बरसाने वाला
जंगल कैसा लगे निराला!!

चलो लगाएँ पेड़ आज हम
नहीं अधिक तो कुछ कम-से-कम
इतना तो कर्तव्य निभाएँ
आओ सब मिल इसे बढ़ाएँ
पर्यावरण का यह रखवाला।
जंगल कैसा लगे निराला!!

■ राजनारायण चौधरी
चित्रः आनन्द सिहं श्याम

फरवरी,1993

उड़ो-उड़ो! उड़ो-उड़ो!!

हरे पेड़ पर खिली धूप में
चिड़ियों ने गाया
खिड़की से झट मुँह निकाल पीपी ने दुहराया।
चिड़ियाँ बोलीं वहाँ से नहीं
बाहर आ जाओ
चढ़ो पेड़ पर साथ हमारे बैठो फिर गाओ।
पीपी बोले मैं क्यों आऊँ
तुम भीतर आओ
फैल जाओ सारे घर में
फिर सारे दिन गाओ।
चिड़ियाँ बोलीं घर छोटा है
घर में कामकाज होता है
पीपी बोले क्या होता है
तुम तो आ जाओ।
चिड़ियाँ बोलीं पेड़ नहीं आकाश नहीं घर में
फूल-पत्तियाँ दूर-दूरियाँ घास नहीं घर में
चलो साथ में उड़ें दूर तक
ऊपर-ऊपर तक
ले जाएँगी तुम्हें आज हम
तारों के घर तक।
पीपी बोले
उड़ मैं कैसे पाऊँगा!
उड़ जाओगी तुम मैं नीचे रह जाऊँगा!!
बोली सोन चिरैया
भैया आओ तो

उड़ लोगे तो उड़ के ज़रा दिखाओ तो।
पीपी आखिर चढ़े पेड़ पर
चिड़िया चहकानी उड़ो! डरे पीपी
लेकिन वे बिलकुल न मानीं।
देकर अपने पंख उधार
गाकर बोली बारम्बार, उड़ो-उड़ो! उड़ो-उड़ो!!
आखिर हिम्मत करके पीपी उड़े
और क्या हुआ अरे! उड़ गए बहुत ऊपर
दिखने लगा खिलौने जैसा उनको धरती पर!
चिड़ियाँ कहीं दिखीं ना लेकिन
तो वे चिल्लाए
चिड़ियों के महीन स्वर
उनके कानों में आए,
जाओ पीपीलाल अकेले!
जाओ पीपीलाल!!
पंख हमारे उड़ो पसारे
प्यारे पीपीलाल!!
वापस लाना पंख हमारे
परियाँ देंगी तुम्हें तुम्हारे लिए बने परसाल!
बन्दनवार जगत के द्वार
सात आसमानों के पार
जगह-जगह तारों के मेले
जाओ पीपीलाल अकेले
जाओ पीपीलाल!!!
सुनकर हाथ हिलाया पीपीजी ने मस्ती में
उड़ते चले गए हँसते तारों की बस्ती में

■ नवीन सागर
चित्रः सबीना सभरवाल
मार्च, 1997

बिजूका

हरे-भरे खेतों में देखो
कैसे तनकर खड़ा बिजूका!

सिर पर कालिखवाली हाँडी
है चूने का टीका,
कुरता ढीला, फटा चीथड़ा
तनिक न इसे सलीका

हाथ-पाँव लकड़ी के इसके
पर मन का है कड़ा बिजूका।

देख बिजुकती नीलगाय
भैंसा और साँड़ भड़कते,
पास न फटके कोई पक्षी
सूरत देख हड़कते

पाँव जमाकर धरती में
अपनी ड्यूटी पर अड़ा बिजूका।

कड़ी धूप हो, सर्दी हो
अथवा नभ की बौछारें,
होता तनिक न विचलित यह
सहकर मौसम की मारें

वफादार सैनिक जैसा
रहता दम साधे पड़ा बिजूका।

है किसान का हमजोली
और फसलों का रखवाला,
सब कुछ देखा करता है यह
मुँह पर डाले ताला

है बदरूप, उपेक्षित, फिर भी
दोस्त खेत का बड़ा बिजूका।

■ भगवती प्रसाद द्विवेदी
चित्रः भज्जू श्याम
मई, 1997

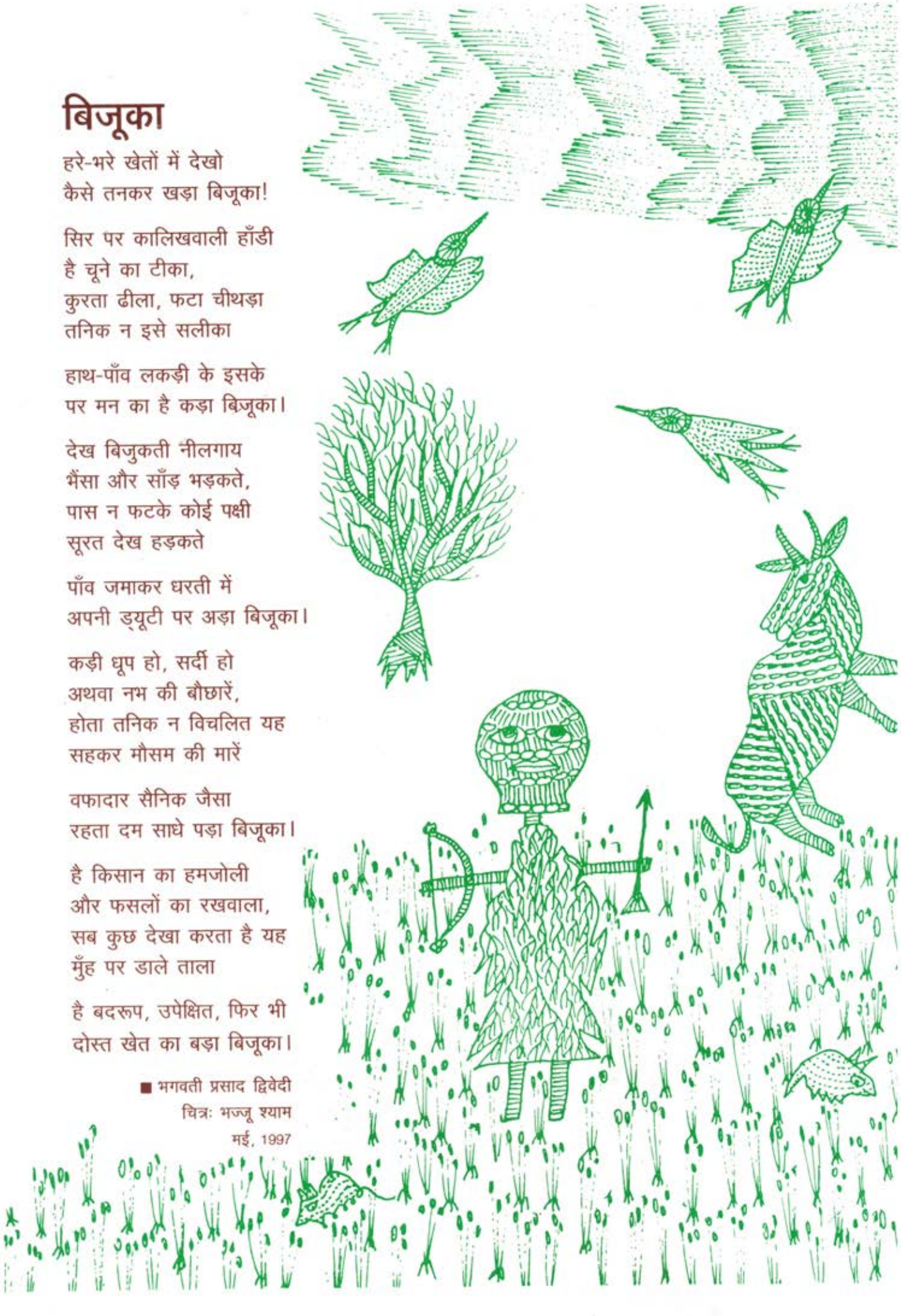

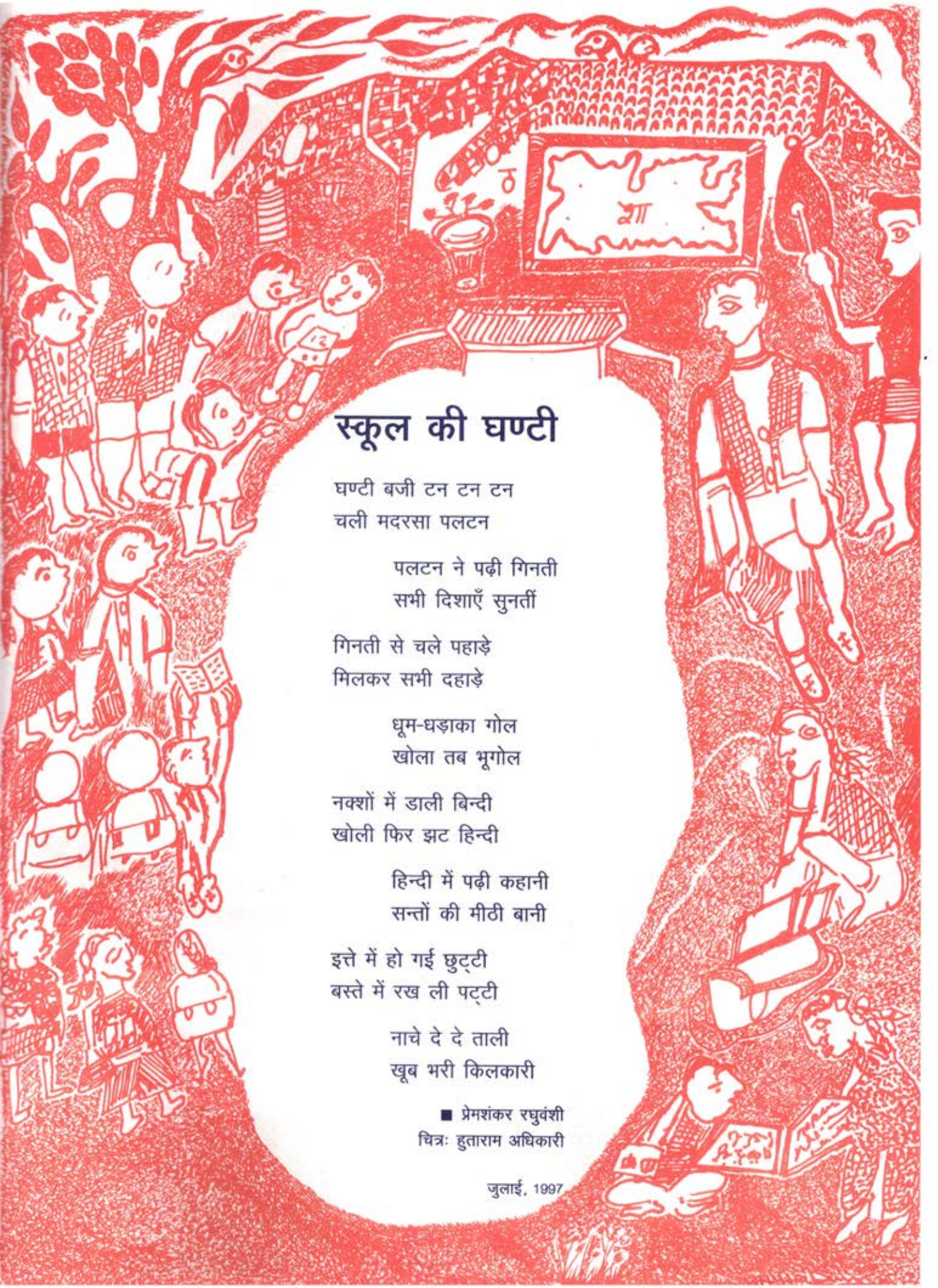

स्कूल की घण्टी

घण्टी बजी टन टन टन
चली मदरसा पलटन

पलटन ने पढ़ी गिनती
सभी दिशाएँ सुनतीं

गिनती से चले पहाड़े
मिलकर सभी दहाड़े

धूम-धड़ाका गोल
खोला तब भूगोल

नक्शों में डाली बिन्दी
खोली फिर झट हिन्दी

हिन्दी में पढ़ी कहानी
सन्तों की मीठी बानी

इत्ते में हो गई छुट्टी
बस्ते में रख ली पट्टी

नाचे दे दे ताली
खूब भरी किलकारी

■ प्रेमशंकर रघुवंशी
चित्रः हुताराम अधिकारी

जुलाई, 1997

पापा लिख दो किताब

पापा लिख दो ऐसी किताब,
जो करती हो मुझसे बात।

रंग-बिरंगे जिसमें चित्र,
ललचाए देखे जो मित्र।

भाषा उसकी बड़ी सरल हो,
अक्षर उसके बड़े चंचल हो।

जैसी हम आपस में बोलें,
पढ़कर मस्त मगन हो डोलें।

नाम हो उसका प्यारा-प्यारा,
छोटा-मोटा सबसे-न्यारा।

नई-नई हो उसमें बात,
पढ़ने लगें सभी दिन-रात।

हो किताब पर इतनी मोटी,
जितना कोई पराँठा-रोटी।

पढ़ने पर तब होगा हल्ला,
भूल जाएँगे खाना-रसगुल्ला।

पढ़कर पाएँ सभी खिताब,
पापा लिख दो ऐसी किताब।

■ उमेश चौहान
चित्रः विवेक

जुलाई, 1996

एकलव्य

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो पिछले कई वर्षों से शिक्षा एवं जनविज्ञान के क्षेत्र में काम कर रही है। एकलव्य की गतिविधियाँ स्कूल में व स्कूल के बाहर दोनों क्षेत्रों में हैं।

एकलव्य का मुख्य उद्देश्य ऐसी शिक्षा का विकास करना है जो बच्चे से व उसके पर्यावरण से जुड़ी हो; जो खेल, गतिविधि व सृजनात्मक पहलुओं पर आधारित हो। अपने काम के दौरान हमने पाया है कि स्कूली प्रयास तभी सार्थक हो सकते हैं जब बच्चों को स्कूली समय के बाद, स्कूल से बाहर और घर में भी, रचनात्मक गतिविधियों के साधन उपलब्ध हों। किताबें तथा पत्रिकाएँ इन साधनों का एक अहम हिस्सा हैं।

पिछले कुछ वर्षों में हमने अपने काम का विस्तार प्रकाशन के क्षेत्र में भी किया है। बच्चों की पत्रिका *चकमक* के अलावा *स्रोत* (विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स) तथा *शैक्षणिक संदर्भ* (शैक्षिक पत्रिका) हमारे नियमित प्रकाशन हैं। शिक्षा, जनविज्ञान एवं बच्चों के लिए सृजनात्मक गतिविधियों के अलावा विकास के व्यापक मुद्दों से जुड़ी किताबें, पुस्तिकाएँ, सामग्रियाँ आदि भी एकलव्य ने विकसित एवं प्रकाशित की हैं।

वर्तमान में एकलव्य मध्य प्रदेश में भोपाल, होशंगाबाद, पिपरिया, हरदा, देवास व शाहपुर (बैतूल) में स्थित कार्यालयों के माध्यम से कार्यरत है।

इस किताब की सामग्री एवं सज्जा पर आपके सुझावों का स्वागत है। इससे आगामी किताबों को अधिक आकर्षक, रुचिकर एवं उपयोगी बनाने में हमें मदद मिलेगी।

सम्पर्क: books@eklavya.in

एकलव्य फाउंडेशन फॉर्च्यून कस्तूरी के पास जाटखेड़ी,
भोपाल - 462 026 (मप्र)

एकलव्य

मूल्य: ₹ 53.00

parag

9 788187 171003